

नए दौर के
**बिजनेस
पंडे**

Business की Wow सोच



नए दौर के बिजनेस फंडे

एन. रघुरामन



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

अनुक्रम

दो शब्द

आभार

1. हर कहीं मौजूद हैं बेहतर काम करनेवाले लोग
2. सफलता के लिए लचीली रखें व्यापारिक नीतियाँ
3. यहाँ मन की शांति के भी मिलेंगे खरीदार
4. बेहतर तरीके से सामने आए आपका प्रयोग
5. खुश रहनेवाला कर्मी ही देगा अच्छे परिणाम
6. सहभागिता कर बढ़ाएँ नए बाजार में कदम
7. ‘हेल्थ इज वेल्थ’ का नया फंडा
8. खुद तैयार करें अपना कारोबारी माहौल
9. सफलता के लिए उत्पाद को कई स्तर पर परखें
10. उत्पाद ही नहीं, समाधान भी मुहैया कराएँ
11. सहभागी प्रबंधन के जरिए विरोधियों को साथ लाएँ
12. ‘नुक्कड़’ के नए अवतार का बढ़ता चलन
13. कारोबारी सफलता का मंत्र है पुनर्निवेश
14. बात ऐसी हो, जो सामनेवाले को साथ जोड़ सके
15. तेजी से बढ़ते बिजनेस के लिए बेहतर तालमेल जरूरी
16. त्योहारों से जुड़े कारोबार में अपार संभावनाएँ
17. टिकाऊ बिजनेस के लिए उपभोक्ताओं का मिजाज जानना जरूरी
18. अच्छी तरह योजना बनाएँ तो आप कभी असफल नहीं होंगे
19. बिजनेस का नया नुस्खा है किस्त

20. मॉल मैनेजमेंट से ज्यादा मुश्किल है मंडी मैनेजमेंट
21. पैसे से ज्यादा करें ग्राहक की कद्र
22. गुणवत्ता-केंद्रित होगा एम.एन.सी. संग व्यापार
23. हर उप्र से जुड़ा उत्पाद देता है ज्यादा मुनाफा
24. क्या आपको है ग्राहकों की दिक्कतों का भान?
25. उत्पाद संग खुशी भी पैकेज में शामिल हो
26. कर्मियों की पैकेजिंग व डस्टिंग है जरुरी
27. बार-बार मेसेज करने से छिटकते हैं ग्राहक
28. कुछ ग्राहक कभी नहीं बताते अपनी पसंद
29. कर्मचारी के उत्साह को खत्म न करें
30. किराना को खतरा नहीं मल्टी ब्रांड से
31. समाज की नब्ज की पहचान करें उद्यम
32. चिंता-समाधान को भी बेच सकते हैं
33. बेहतर प्रबंधन के लिए सही फिडबैक है जरुरी
34. अपने उपभोक्ता वर्ग की करें सही पहचान
35. मंदी के दौर में ग्रामीण क्षेत्रों की ओर करें रुख
36. उत्पाद को भावनाओं से जोड़ बढ़ाएँ कारोबार
37. वैश्विक पहचान के लिए सरल रखें नाम
38. फिक्स्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर का हो 24/7 इस्तेमाल
39. पहले अवसर को हाथ से न जाने दें
40. क्या आप में है अनसुने को सुनने की कला?
41. तकनीक के बल पर करें प्रकृति का दोहन
42. भावनाएँ किसी भी दौर में बिक सकती हैं

43. समस्या को हाईलाइट कर बेचें अपना उत्पाद
44. ग्राहक के व्यवहार को समझ बढ़ाएँ कारोबार
45. बिक्री बढ़ाने में मददगार होते हैं आकर्षक ऑँकड़े
46. कम विकल्पों के साथ ज्यादा बिक्री
47. कमजोरी की पहचान कर सेवा में सुधार लाएँ
48. ग्राहक की जरूरतें समझ बढ़ाएँ बिक्री
49. खाद्य कारोबार में छाई हैं क्षेत्रीय कंपनियाँ
50. बदल रहे हैं अनुलाभ देने के तौर-तरीके
51. छोटे संस्थानों में मिलता है हर तरह का अनुभव
52. नए बिजनेस की देखभाल नवजात शिशु के समान करें
53. अपने दिल की बात सुनो
54. पैसा कमाइए, लेकिन अच्छे तरीकों से
55. बिक्री बढ़ानी है तो सीधे ग्राहक से जुड़िए
56. फायदेमंद हो सकता है 'बिजनेस के अंदर बिजनेस'
57. फूलों के बिजनेस में लाभ पक्का है
58. उद्योग-व्यवसाय शुरू करने के लिए उम्र का कोई बंधन नहीं होता
59. असफल लोगों पर बिजनेस भी एक नई चीज है
60. किसी समस्या के हल में भी है बिजनेस आइडिया
61. मिशन से किया बिजनेस बहुत कुछ देता है
62. सिलाई-बुनाई जैसे घरेलू कामकाज भी दिला सकते हैं भारी मुनाफा
63. बहुराष्ट्रीय कंपनी से कमतर नहीं है खेती का व्यवसाय

दो शब्द

प्रसिद्ध ब्रिटिश दार्शनिक लॉरेंस स्टेम ने 17वीं सदी में कहा था, “ज्ञान की भूख समृद्धि की भूख की तरह होती है। जितनी मिलती है, भूख उतनी ही बढ़ती जाती है।” लॉरेंस स्टोम की यह छोटी बात बड़ा इशारा करती है। आज का युग ज्ञान का युग है। चहुँओर फैले ज्ञान के इस असीम सागर से कुछ मोती चुनकर लाना आसान नहीं होता। वक्त की आपाधापी में हम अपने बीच ही घटनेवाली कुछ बातों को अनदेखा कर जाते हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो इन्हीं बातों का मतलब गहराई से समझते हैं और दूसरों को वही अर्थ सरल भाषा में समझाते हैं। ऐसे ही मानकों पर खरा उतरता है एन. रघुरामन का मैनेजमेंट फंडा। भारी और लच्छेदार वाक्यों का इस्तेमाल किए बगैर, जीवन की हकीकत और जीवन प्रबंधन की कला आम पाठकों तक पहुँचाने का सहज माध्यम साबित हुआ है, दैनिक भास्कर और दिव्य मराठी और दिव्य भास्कर का नियमित स्तंभ, ‘मैनेजमेंट फंडा’।

वर्ष 2003 में विविध क्षेत्रों से जुड़ी जानकारी सहज-सरल भाषा में आम पाठकों तक पहुँचाने के लिए मैनेजमेंट फंडा की शुरुआत हुई। धीरे-धीरे यह स्तंभ लोकप्रियता के नित नए सोपान चढ़ता गया। यहाँ तक कि साल के 365 दिन पाठकों को इसका इंतजार रहने लगा। आज यह स्तंभ गागर में सागर की तर्ज पर ज्ञान समेटे हुए है। इसकी मदद से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और स्थितियों को देखने का नजरिया विकसित होता है। जीवन का कोई क्षेत्र शायद ही रघुरामन की नजर से बचा हो। यह पुस्तक उनके आठ वर्षों में प्रकाशित स्तंभों का चुनिंदा संग्रह है। उम्मीद है कि पुस्तक विभिन्न आयु के पाठकों में मूल स्तंभ की तरह ही लोकप्रिय होगी और उन्हें विभिन्न स्थितियों में आगे बढ़ने की राह दिखाएगी।

—रमेश चंद्र अग्रवाल

अध्यक्ष

भास्कर समूह

आभार

मेरे द्वारा लिखित स्तंभों का इस पुस्तक के रूप में आना कई शुभचिंतकों के सहयोग से ही संभव हो सका है। सबसे पहले मैं दैनिक भास्कर समूह के प्रबंध निदेशक, श्री सुधीर अग्रवाल का आभार व्यक्त करना चाहूँगा, जिन्होंने मुझमें विश्वास व्यक्त किया कि मैं साल के 365 दिन और सालो-साल किसी एक विषय पर लगातार लिख सकता हूँ। उनकी प्रतिबद्धता और मुझमें विश्वास ने मुझे अभिव्यक्ति के लिए मंच प्रदान किया। मैं विज्ञापन प्राप्त करने के दबाव से मुक्त होकर निरंतर लेखन कर पा रहा हूँ और इससे मुझे करोड़ों पाठकों का असीम प्रेम मिल रहा है।

अपनी पत्नी प्रेमा और बेटी निशेविता, जिसके क्रमिक विकास से मुझे मैनेजमेंट के नए सिद्धांत और सूत्र मिले, की धैर्यपूर्ण भागीदारी के प्रति भी मैं आभार प्रकट करना चाहूँगा। दैनिक भास्कर समूह के वरिष्ठजनों और सहयोगियों की चिंतनशील सोच और सहयोग के बिना मेरे लेखन को सार्थकता नहीं मिलती; इन सबका मैं कृतज्ञ हूँ—सर्वश्री रमेश चंद्र अग्रवाल, सुधीर अग्रवाल, गिरीश अग्रवाल, पवन अग्रवाल।

हर कहीं मौजूद हैं बेहतर काम करनेवाले लोग

कई लोग अपने घर में फाइव स्टार होटल जैसा खाना चाहते हैं, जो चाहे घर में पका हो या ऑर्डर पर मँगवाया गया हो। लेकिन अब इस मामले में एक नया मोड़ आया है। अनेक फाइव स्टार रेस्त्राँ अपने यहाँ घर जैसा खाना पकाने के लिए स्थानीय गृहिणियों की सेवाएँ लेने लगे हैं। कुछ माह पूर्व मदुरै की यात्रा के दौरान मुझे एक बिलकुल नया बिजनेस आइडिया मिला। मैं मदुरै में ताज गेटवे के एक होटल में था, जहाँ पर मुझे घरेलू स्टाइल में पके लजीज स्थानीय व्यंजन परोसे गए, जो जाहिर तौर पर किसी स्थानीय गृहिणी ने पकाए होंगे। उस खाने का जो जायका था, वह आपको पंच-सितारा होटल के किसी प्रशिक्षित शेफ के हाथों पकाए गए भोजन में नहीं मिलेगा। इस बारे में जानकारी करने पर पता चला कि ताज गेटवे होटल ऐसी तकरीबन 20 गृहिणियों की सेवाएँ लेता है, जो अपने इलाके के हिसाब से खालिस घरेलू स्टाइल में खाना पकाती हैं। उन्हें मासिक अनुबंध पर नियुक्त किया जाता है। यहाँ पर उन्हें रोज चार से पाँच घंटे तक काम करना पड़ता है और वे इस दौरान अलग-अलग तरह के छह से सात व्यंजन तैयार करती हैं।

एक तरफ जहाँ तमाम गृहिणियाँ शेफ व मास्टर शेफ से व्यंजन तैयार करने के तौर-तरीके सीखना चाहती हैं, वहीं कुछ होटलवाले अब एक नई रीति अपना रहे हैं। इन होटलों के शेफ प्राहकों की जरूरत और पसंद के हिसाब से ऐसा खाना पकाना सीख रहे हैं, जो बिलकुल घर में पके खाने जैसा लगे। इन स्वादिष्ट व्यंजनों को मेन्यू में ‘घरेलू स्टाइल का आंचलिक भोजन’ शीर्षक के तहत पिंट किया जाता है। उनका किचन उन कर्मशियल किचनों से अलग होता है, जिनमें विभिन्न मैनेजमेंट स्कूलों से प्रशिक्षित शेफ थोक में खाना तैयार करते हैं। ऐसी हरेक होममेकर कुक को दो असिस्टेंट दिए जाते हैं। ये असिस्टेंट होटल के नियमित कर्मचारी होते हैं, जो उन्हें घर के खाने जैसे स्वादिष्ट व्यंजन तैयार करने में मदद करते हैं।

उन्हें खाना पकाने के लिए जो जरूरी सामग्री दी जाती है, वह भी कर्मशियल उत्पादन में इस्तेमाल होनेवाली सामग्रियों की तुलना में रोजमर्ग में इस्तेमाल होनेवाली सामग्रियों के ज्यादा करीब होती है। इनके बरतन और अन्य साजो-सामान भी अलग होते हैं और वहाँ का माहौल उन्हें ऐसा एहसास देता है मानो ये महिलाएँ अपने घर के किचन में ही खाना पका रही हैं। स्थानीय जनरल मैनेजर ने मुझे बताया कि ताज गेटवे के कुनूर, ऊटी, मदुरै, कालीकट, विजयवाड़ा, एर्नाकुलम, मंगलौर, बैंगलुरु, चिकमंगलूर, नासिक, आगरा, वाराणसी, खजुराहो,

अहमदाबाद, सूरत, वडोदरा में स्थित होटलों में घर जैसा खाना पकाने के लिए पार्ट्टाइम शेफ मौजूद हैं।

वास्तव में, इस तरह की होममेकर शेफ शाम की शिफ्ट में काम करती हैं। ये शाम को तकरीबन 5 बजे आती हैं और रात को 10 बजे तक अपने होम किचन का पूरा कामकाज समेटकर वापस चली जाती हैं। केरल के एर्नाकुलम में स्थित ताज गेटवे होटल इकलौता ऐसा होटल है, जहाँ पर इस तरह की तीन होममेकर कुक अलग-अलग शिफ्ट में काम करती हैं। यहाँ घरेलू स्टाइल का नाश्ता भी तैयार किया जाता है। हर महीने इसका मेन्यू बदलता है, ताकि ज्यादा-से-ज्यादा ग्राहक इसके प्रति आकर्षित हों। जो लोग एक सुइट के लिए 400 डॉलर तक खर्च करते हैं, उन्हें अंतरराष्ट्रीय मानदंडों के हिसाब से बने बेस्वाद फ़ीके भोजन के बजाय अमूमन घरेलू स्टाइल का खाना ज्यादा पसंद आता है।

फ़ंडा यह है कि आपके आस-पास ही बेहतर काम करनेवाले लोग मौजूद हैं और यदि आप उन्हें अपने संस्थान के साथ जोड़ना चाहते हैं तो अपनी टाइमिंग में लचीलापन लाएँ। उनके जरिए आपको बेहतरीन नतीजे मिल सकते हैं।

सफलता के लिए लचीली रखें व्यापारिक नीतियाँ

चैनई के व्यस्त अन्ना सलाई इलाके में वाणी महल स्थित कैफे कॉफी डे (सी.सी.डी.) में मैंने दस वर्षीय बालक को प्रवेश करते देखा। उसे वहाँ जाते देख मैं अपनी उत्सुकता दबा नहीं पाया और उसके पीछे-पीछे हो लिया। कैफे में प्रवेश करने के बाद मैं उसके पास गया और अपना परिचय दिया। जवाब में उसने सिर्फ अपना नाम गिरि रवि शेषाद्री बताया। इसके अलावा उसने कुछ नहीं बताया। यह देख जब मैंने उसे कुरेदना शुरू किया, तभी सी.सी.डी. के एक वेटर ने अपनी मौजूदगी दर्ज करते हुए कहा कि वह लड़का उनका मेहमान है। इसके साथ ही लड़के को चॉकलेट ड्रिंक के साथ उसकी पसंद का खाद्य पदार्थ सर्व कर दिया गया। वह लड़का अपना होमवर्क करते हुए उन्हें खाता जा रहा था।

जिज्ञासा तो जिज्ञासा ठहरी। थोड़ा और कुरेदने पर पता चला कि वह लड़का हर रोज उसी समय सी.सी.डी. में आता है और एक ही जगह पर बैठता है। उसकी देखभाल की पूरी जिम्मेदारी स्टाफ की होती है। गिरि की दादी माँ उसकी आंटी की डिलेवरी में मदद के लिए शहर से बाहर गई हुई हैं। उसके अभिभावक इतने छोटे बच्चे के सुपुर्द घर की चाबी नहीं करना चाहते थे, अतः उन्होंने ही सी.सी.डी. के साथ मिलकर उसके लिए यह व्यवस्था की। गिरि यहाँ स्वास्थ्यवर्धक चॉकलेट ड्रिंक और कुछ खाते हुए अपना होकर्वर्क निपटा लेता है। अभिभावक भी उस व्यस्त कैफे में उसकी सुरक्षा को लेकर बेफिक्र रहते हैं।

इस लिहाज से देखें तो आजकल कैफे कई काम आ रहे हैं। दिल्ली के कनॉट प्लेस में व्यूशन टीचर और उनके स्टूडेंट नियमित तौर पर मिलते हैं। कुछ खाते-पीते हुए उन लोगों का समूह पढ़ाई-लिखाई करता है। बैंगलुरु में विट्ल माल्या रोड पर एक शख्स दिन में कई बार कैफे का चक्कर लगाता है। चक्करों की यह संख्या उसकी मीटिंग्स की संख्या पर निर्भर करती है।

बैंगलुरु में जब डीएनए समाचार-पत्र लॉञ्च करना था तो मैंने भी इसी कैफे में बैठकर 250 लोगों का इंटरव्यू लिया था, जिनमें से 138 लोगों को काम पर रखा था। यह सिलसिला पूरे दो महीने चला था, जब तक कि ऑफिस की इमारत का निर्माण पूरा नहीं हो गया था। सच तो यह है कि मैंने कैफे में बैठे-बैठे ही योग्य अभ्यर्थियों को नियुक्ति-पत्र दिए। सी.सी.डी. इस तरह के कामों को अंजाम देने की सुविधाएँ भी उपलब्ध कराता है।

इस तरह के कैफे इसी सिद्धांत पर आजकल काम कर रहे हैं कि किस तरह नियमित ग्राहकों के फेरों की संख्या बढ़ाई जाए। साथ ही किस तरह से नए-नए ग्राहकों को कैफे के साथ जोड़ा जा सके। इस फेरे में कोस्टा कॉफी ने अनूठी पहल की है। उसने अपने यहाँ स्टैंडअप कॉमेडी समेत बुक रीडिंग सेशन आयोजित करने शुरू किए हैं। साथ ही कला और गीत-संगीत से जुड़े कार्यक्रम भी नियमित अंतराल पर होते हैं। इस तरह इनमें रुचि रखनेवाले लोग इसके नियमित ग्राहक बन गए हैं। इसके अलावा इस कॉफी शृंखला ने अपने यहाँ इंटरव्यू, बिजनेस मीटिंग और क्लाइंट डिस्कशन के लिए प्राइवेट स्पेस भी मुहैया कराना शुरू किया है।

न्यूयॉर्क जैसे शहर में तो एक ही सड़क पर परस्पर प्रतिस्पर्धी शृंखला के कॉफी कैफे स्थित हैं। खास बात यह है कि सभी अपने ग्राहकों की जरूरत के लिहाज से सेवाएँ उपलब्ध कराते हैं। सच तो यह है कि सामूहिक रूप से उनका व्यापार अच्छा चल रहा है, क्योंकि वह क्षेत्र लोगों को उनकी पसंद के अनुरूप विकल्प चुनने का अवसर देता है। इससे वहाँ काफी लोग आते हैं।

फंडा यह है कि यदि आप अपनी नीतियों को लेकर कठोर नहीं हैं और बदलते समय के अनुरूप लचीला रवैया अपनाते हैं, खासकर ग्राहक-केंद्रित नीतियाँ, तो आपके व्यापार के सफल होने की दर काफी हद तक बढ़ जाती है।

यहाँ मन की शांति के भी मिलेंगे खरीदार

कुछ दिन पहले हमारा पूरा परिवार चेन्नई में एक वैवाहिक समारोह के लिए इकट्ठा हुआ था। वहाँ पहुँचने पर हमने पाया कि हमारा पुश्टैनी मकान शादी जैसे बड़े आयोजन के लिहाज से तैयार नहीं है। ऐसा हमें अपने मकान के आकार की वजह से नहीं वरन् उससे जुड़ी तमाम दिक्कतों की वजह से लगा। खाली पड़े रहने के कारण घर में लगे कई नलों से पानी टपक रहा था, बिजली के स्विच टूटे हुए थे, जगह-जगह धूल जमी थी, दीवारें गंदी हो रही थीं, घर के ऊँगन में खरपतवार उग आई थी। इसके अलावा और भी कई दिक्कतें थीं, जिनका तुरंत निराकरण करना जरूरी था।

तभी किसी ने हमें ‘1-कॉल’ की सेवाएँ लेने का सुझाव दिया। ‘1-कॉल’ एक ऐसी कंपनी है, जो आपके लिए किराने की शॉपिंग से लेकर आपकी जरूरत का हर काम करती है और वह भी बेहद सस्ती दरों पर। चेन्नई के टिडेल पार्क में स्थित इस कंपनी के ऑफिस में फोन करने के पौन घंटे के भीतर ही चार सदस्यों की एक टीम हमारे घर पहुँच गई और उन्होंने 48 घंटे में हमारे घर को चकाचक कर दिया। हमें उन्हें सिर्फ यह बताना पड़ा कि हम उनसे क्या चाहते हैं।

इस कंपनी की वजह से हमें सबसे बड़ी चीज जो मिली, वह थी ‘मन की शांति’। यदि हमें प्लंबर, इलेक्ट्रिशियन और सोफा क्लीनर इत्यादि को ढूँढ़ने के बाद काम और दाम के सिलसिले में उनसे माथापच्ची भी करनी पड़ती तो हमारी ‘मन की शांति’ जरूर खो जाती। वास्तव में उन दो दिनों में हमने मूवी देखी, बाहर खाना खाने का आनंद लिया और मेहमानों के लिए खरीदारी भी की। इस कंपनी ने (जिसका स्लोगन है—‘वन कॉल डज इट ऑल’) वास्तव में वह हर काम किया, जो हम चाहते थे। इस कंपनी की सी.ई.ओ. प्रेरणा भूटानी कहती हैं कि अब मध्यम वर्गीय व उच्च वर्गीय लोग इस तरह की प्रोफेशनल सर्विस के लिए दाम चुकाने को तैयार हैं, क्योंकि यह उन्हें ‘सुकून’ देता है। ऐसी दुनिया में, जहाँ पर हम सब की जीवनचर्या काफी व्यस्त है, वहाँ पर हमारे पास अपने विभिन्न तरह के कामों को करने के लिए किसी सिद्धहस्त व्यक्ति को खोजने के लिए समय नहीं होता।

हम में से ज्यादातर लोग व्यक्तियों के एक नेटवर्क पर निर्भर होते हैं, जो सब-कांट्रैक्टर्स की तरह काम करते हैं और इनमें से हुनरमंद लोगों को तलाशना बहुत मुश्किल होता है। ऐसे घाघ लोग आपसे काम और इसके लिए कुछ एडवांस तो ले लेते हैं, लेकिन इसके बाद हफ्तों अपनी शक्ति नहीं दिखाते। ऐसे में आपका रक्तचाप बढ़ने लगता है और आप फोन पर उस पर चिल्लाते हुए उससे एडवांस

रकम वापस करने की माँग करने लगते हैं। इसका सीधा नतीजा यह होता है कि ग्राहक दोबारा इन सब-कांट्रेकर्ट्स को काम नहीं देते। यही कारण है कि वे हमेशा नए 'बकरे' की तलाश में रहते हैं, जिसे हलाल किया जा सके।

इस लिहाज से देखें तो '1-कॉल' का काम बेमिसाल था। चेनई में पहले रहते हुए मैंने कभी ऐसा व्यवस्थित काम नहीं देखा था। आज के दौर में घर के रख-रखाव से जुड़े इस तरह के कामों को करने के लिए संगठित व विश्वसनीय सेवाओं की कमी है। वहीं दूसरी ओर ऐसे घरों में, जहाँ पर पति-पत्नी दोनों कमानेवाले हों, व्यस्त जीवनचर्या के चलते घर के रख-रखाव संबंधी छोटे-मोटे काम करवाने के लिए भी समय निकालना मुश्किल होता है।

फंडा यह है कि एकल परिवारों के इर्द-गिर्द एक नया बाजार उभर रहा है, जो विभिन्न सेवाओं के लिए वाजिब दाम चुकाने के लिए तैयार हैं। लेकिन इन सेवाओं से उन्हें 'मन की शांति' मिलनी चाहिए, जो इस नए कारोबार की पहली शर्त है।

बेहतर तरीके से सामने आए आपका प्रयोग

जेयर्ड फोगले अमेरिका की इंडियाना यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। उसका पास ही में स्थित ‘सबवे’ नामक एक सैंडविच सेंटर में अकसर आना-जाना होता था। गौरतलब है कि ‘सबवे’ अमेरिका का एक बेहद लोकप्रिय ब्रांड है, जिसने सन् 2001 में 13,247 स्टोर्स खोलते हुए मैकडोनल्ड जैसे स्थापित स्टोर को भी पीछे छोड़ दिया। जब भी जेर्ड इस स्टोर में आता तो उसे खास तवज्जो दी जाती, क्योंकि वह हर लिहाज से एक बड़ा ग्राहक था। वह भारी मात्रा में खाने-पीने की चीजें खरीदता। ‘सबवे’ में उसके लिए सामान्य से बड़े आकार के हॉटडॉग्स तैयार किए जाते। जेर्ड खुद भी बहुत भारी-भरकम इनसान था। उसका वजन 425 पौंड था, जो तकरीबन 200 किलोग्राम तक बैठता है।

सबवे मैनेजमेंट ने जेर्ड की सेहत पर काम करने का फैसला किया। उसने ऐसे सैंडविच बनाने शुरू कर दिए, जिनमें 7 ग्राम से कम फैट (वसा) होता था। उन सैंडविचों में कभी भी मायो, तेल या पनीर नहीं मिलाया जाता और फिर भी उन्हें जेर्ड के हिसाब से स्वादिष्ट बनाया जाता, ताकि वह ‘सबवे सैंडविच’ के अलावा कुछ और न खाए। यहीं नहीं, इस सेंटर ने जेर्ड को सेहत संबंधी मामलों की जानकारी देनी शुरू की और जहाँ तक सैंडविच का सवाल है तो इस मामले में उसे ‘इंटेलिजेंट’ बना दिया।

दो महीने बाद उन्होंने जेर्ड को सुझाव दिया कि उसे कैंपस बस का इस्तेमाल करने के बजाय डेढ़ मील का यह फासला पैदल तय करना चाहिए, जो बहुत ज्यादा नहीं है और यदि इसे किलोमीटर के हिसाब से देखें तो यह महज 2.3 किलोमीटर बैठता है। उसे हफ्ते में सिर्फ पाँच दिन पैदल चलना होता, क्योंकि दो दिन कॉलेज बंद रहता था। इस चहलकदमी से जेर्ड को अच्छा लगने लगा और उसे भूख भी लगने लगी, क्योंकि इस तरह उसके द्वारा खाया गया भोजन जल्दी पच जाता। पैदल चलने की वजह से उसकी शारीरिक संरचना में काफी सुधार आया।

इस नियमित आदत के ठीक एक साल बाद 6 फीट 2 इंच लंबे जेर्ड ने अपना वजन 180 पौंड तक घटा लिया। इस तरह एक मोटे लड़के से स्मार्ट लड़के में तब्दील होने के बारे में कॉलेज की स्टूडेंट मैगजीन में एक संपादक ने एक छोटी सी स्टोरी लिखी। इस खबर के प्रकाशित होते ही अमेरिका के एक राष्ट्रीय अखबार ने उस स्टोरी को उठाया और उसे पूरे देश में प्रकाशित कर दिया। उसका शीर्षक था—‘जेर्ड, द सबवे गाइ’। दो दिन बाद जब जेर्ड अपना ग्रेजुएशन पूरा कर कैंपस छोड़ने की तैयारी कर रहा था, तभी उसे सबवे की ओर

से अपना प्रवक्ता बनने का ऑफर मिला। उसे आज भी ‘जेयर्ड, द सबवे गाइ’ के नाम से जाना जाता है।

एक ऐसी दुनिया में, जहाँ पर दुनिया भर के ग्राहकों ने फास्ट फूड इंडस्ट्री को लोकप्रिय बनाया और इस इंडस्ट्री को जंक फूड इंडस्ट्री नामक लांछन मिला, वहाँ पर ‘सबवे’ की पोजीशनिंग और दूसरों से अलग होने की इसकी खूबी ने न सिर्फ ग्राहकों को बल्कि व्यापक तौर पर फास्ट फूड इंडस्ट्रीवालों को भी अचंभित कर दिया। ‘सबवे’ की नई छवि ऐसी जगह की है, जहाँ पर आप स्वास्थ्यवर्धक फास्ट फूड पा सकते हैं और जेयर्ड ने जो मिसाल पैदा की, वह इस फास्ट फूड शृंखला व इसकी फ्रेंचाइजी लेनेवालों के लिए दोहरे लाभ की तरह है। इससे स्टोर्स को अपनी बिक्री बढ़ाने में मदद मिली, क्योंकि आज हर कहीं लोग मोटापे को लेकर चिंतित हैं।

फंडा यह है कि यदि आप वक्त की जरूरत के मुताबिक अपने उत्पाद या कंपनी को पुनर्व्यवस्थित करते हुए इसकी कोई जीवंत मिसाल पेश कर सकें, जिसे लोग देख सकें, महसूस कर सकें और अंगीकार कर सकें तो इससे आपको काफी लाभ मिलेगा।

खुश रहनेवाला कर्मी ही देगा अच्छे परिणाम

क्या आप अपने काम से खुश हैं? अगर इसका जवाब ‘हाँ’ में है तो आप समेत कंपनी का समग्र विकास निश्चित है। कारण, खुशहाल कर्मचारी अपने भविष्य को सँवारने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। इस फेर में कंपनी का भी उत्तरोत्तर विकास स्वतः होता रहता है। हॉर्वर्ड बिजनेस रिव्यू (एच.बी.आर.) द्वारा वैश्विक स्तर पर किए गए सर्वेक्षण में सामने आया है कि खुश रहनेवाले कर्मचारी अपने समकक्ष साथियों की तुलना में 165 प्रतिशत ज्यादा उत्पादक होते हैं। सर्वेक्षण में खुश रहने से आशय जिंदादिली, जुनूनी और रोमांचित रहने की प्रवृत्ति से रखा गया था। ऐसे में प्रश्न उठता है कि कर्मचारी को क्या चीज खुश बनाती है? सर्वेक्षण के मुताबिक यह वेतन नहीं होता, लेकिन सीखने की वह प्रक्रिया खुशी देती है, जिसके जरिए कर्मचारी को नई-नई बातें पता चलती हैं। इस तरह ही बतौर प्रोफेशनल उसका उत्तरोत्तर विकास होता है, जो उसे खुशी देता है। अब यहाँ एक प्रश्न यह भी उठता है कि कर्मचारी को नई दक्षता से लैस करने के बाद क्या उत्पादकता बढ़ जाती है? नहीं, कर्तई नहीं। उसे अपने कार्यक्षेत्र में निर्णय लेने की खुली छूट होनी चाहिए। अलास्का एयरलाइन ने पिछले एक दशक में कर्मचारियों को सशक्त बनानेवाली एक संस्कृति विकसित की है।

यानी नई दक्षता और सशक्तीकरण किसी कर्मी को खुशी का अहसास देता है? इसका जवाब एक बार फिर ‘ना’ में है। वह कंपनी में सूचनाओं के आदान-प्रदान करनेवाले तंत्र का एक हिस्सा बनना चाहता है। सूचनाओं के अभाव में किसी जगह काम करना बेहद थकाऊ और गैर-प्रेरणादायी होता है। इस क्रम में अच्छी बात यह है कि बगैर किसी बड़े फेर-बदल या वित्तीय निवेश के लीडर्स और मैनेजर्स अपने कर्मचारियों को खुश रखनेवाली संस्कृति दे सकते हैं। कैसे? इसका जवाब यह है। यदि आप काम या प्रदर्शन के आधार पर उसका आकलन कर कंपनी की जरूरत या लक्ष्य को उसके साथ शेयर करते हैं तो वही कर्मचारी ऐसे निर्णय लेने में सक्षम हो जाएगा, जिसका प्रभाव उसके समग्र प्रदर्शन के साथ-साथ कंपनी की उद्देश्य-प्राप्ति की राह पर स्पष्ट देखा जा सकेगा।

एच.बी.आर. ने सुझाव दिया है कि जो लोग खुश रहते हुए अपने कार्यक्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ना चाहते हैं, उन्हें सबसे पहले ब्रेक लेना होगा। फिर अपने काम को और पैनापन देनेवाली नई बातों को आत्मसात् करना होगा, ताकि उसके समेत कंपनी को उसका फायदा मिल सके। साथ ही उसे ऐसे अवसरों की तलाश में रहना होगा, जो उसे कुछ नया सीखने का मौका दें। एच.बी.आर. द्वारा दिए गए सुझाव में यह भी कहा गया है कि कर्मचारियों को ऐसे संबंधों में

निवेश करना होगा, जो उसे ऊर्जावान् बनाएँ। यानी आगर कोई कर्मचारी सीटी बजाते और हाथ की अँगुली में चाबी का गुच्छा नचाते हुए ऑफिस में दाखिल हो तो बतौर मैनेजर आपको खुश होना चाहिए, क्योंकि आपका कर्मचारी खुश है। इसकी एक वजह यह है कि वह ऑफिस के माहौल को भी खुशनुमा बनाएगा और अपने समकक्ष कर्मचारियों, यानी ऐसे कर्मचारी जो मुँह लटकाए हुए ऑफिस में प्रवेश करते हैं और चुपचाप अपने ठिए पर जाकर बोझिल मन से काम करना शुरू कर देते हैं, की तुलना में बेहतर उत्पादकता के साथ काम करेगा।

फंडा यह है कि खुश रहनेवाला कर्मचारी सिर्फ बेहतर उत्पादक ही नहीं होता, बल्कि उसका रवैया ऑफिस को भी सकारात्मक ऊर्जा देता है। जब ऑफिस का माहौल खुशनुमा बनता है तो उसका असर बाहर, खासकर उसके परिवार पर, भी पड़ता है। यानी वह अगले दिन भी खुशगवार मन के साथ ऑफिस में प्रवेश करता है। इस तरह यह चक्र नियमित हो जाता है।

सहभागिता कर बढ़ाएँ नए बाजार में कदम

यदि आपने कोलकाता में पंद्रह दिन भी गुजारे हैं तो आपके लिए यह कहना मुश्किल होगा कि आपने वहाँ की सर्वाधिक पसंदीदा मिठाई रसोगोल्ला (जिसे हम ‘रसगुल्ला’ कहते हैं) नहीं खाई। लिहाजा यह कोई न्यूज आइटम नहीं है। लेकिन यदि कोई आपसे कहे कि उसने वहाँ कई बार चॉकोगोल्ला खाया है तो क्या प्रतिक्रिया होगी? हाल ही में कोलकाता से लौटे मेरे एक मित्र ने मुझसे एक चॉकोगोल्ला का जिक्र किया तो मेरे कान खड़े हो गए। कैडबरी ने अपनी अनूठी कैंपेन के तहत कोलकाता की मशहूर मिष्टी शॉप्स के साथ टाई-अप करते हुए चॉकलेट्स की एक फ्यूजन वैरायटी तैयार की है। कैडबरी का यह कदम पारंपरिक मिष्टान बाजार में आक्रामक ढंग से उत्तरने का प्रयास है, जो उसकी टैगलाइन ‘कुछ मीठा हो जाए’ के साथ बेहतर तरीके से जम जाएगा।

कैडबरी ने इस महानगर की नौ अग्रणी मिष्टान शृंखलाओं के साथ टाई-अप किया है। कोलकाता की मिष्टान इंडस्ट्री काफी असंगठित है और उसके पास अपने उत्पादों को प्रदर्शित करने के लिए समुचित संसाधन व माध्यम नहीं हैं। इसलिए कैडबरी ने असंगठित मिष्टान भंडारों की ओर से जिस मुहिम को हाथ में लिया है, वह मिष्टान भंडार के स्वामियों तथा कैडबरी दोनों के उत्पादों को बेहतर प्रदर्शन का मौका मुहैया करा रहा है। हालाँकि कैडबरी बंगाल के पारंपरिक मिष्टान बाजार को विस्थापित नहीं कर सकता, लेकिन इसमें मीठे के शौकीन ग्राहकों को लुभाने की क्षमता तो है ही, जिस वजह से यह स्थानीय आबादी के मध्य चर्चा का विषय बन गया है। अब स्थानीय मिष्टान भंडार मालिक कैडबरी डेयरी मिल्क से बननेवाले ‘चॉकलेट फ्लॉवर संदेश’, ‘गिलाटो संदेश’ और ‘मट पाई संदेश’ जैसे नए उत्पाद बेच रहे हैं। इसके लिए कंपनी ने कोलकाता के रहवासियों के बीच एक जनमत सर्वेक्षण भी करवाया और इसके प्रमोशन के लिए कई जाने-माने टॉलीवुड सितारों को सेलिब्रिटी एंबेसडर के तौर पर साथ जोड़ा।

भारत में चॉकलेट व मिठाइयों की प्रति व्यक्ति खपत 20 ग्राम के आस-पास है, जबकि ज्यादातर यूरोपीय देशों में यह ऑकड़ा 5 से 8 किलो के बीच है। इस लिहाज से कैडबरी की बाजार के नए हिस्सों में पहुँचने की कोशिश समझी जा सकती है। ‘कोऑप्टीशन’ मैनेजमेंट की भाषा में अपेक्षाकृत नया शब्द है। यह दो शब्दों कॉम्पिटीशन (प्रतिस्पर्द्ध) और कोऑपरेशन (सहभागिता) से मिलकर बना है। इसका मतलब है कि जहाँ आप बाजार में अपने प्रतिस्पर्द्धी से होड़ करते हैं, वहीं नए क्षेत्र में प्रवेश के लिए उसके साथ सहभागिता भी करते हैं। जब वर्ष

1990 के दशक के मध्य में रीबॉक कंपनी इस देश में आई तो इसने यहाँ पर अपना कोई आउटलेट खोलने के बजाय बाटा के साथ सहभागिता करते हुए उसके शोकेस में अपने लिए थोड़ी जगह माँगी। बाटा ने उसे अपने आउटलेट्स में जगह दे दी, यद्यपि उनके उत्पाद समान (जूते) ही थे। उसने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि रीबॉक के जूते अमीर ग्राहकों के लिए ही थे।

बाटा का सबसे महँगा ब्रांड हशौप्पी मात्र 1,500 रुपए में बिक रहा था, जबकि रीबॉक के जूतों की रेंज 2,200 से शुरू होती थी। इस सहभागिता से दोनों को फायदा मिला। उनकी दुकान पर आनेवाले ग्राहकों में से जो रीबॉक लेना वहन कर सकते थे, वे इसे खरीद लेते, जबकि बाकी लोग बाटा के जूते खरीदते। इसी तरह कैडबरी भी अपना चॉकोगोल्ला ऐसे लोगों को नहीं बेच रही है, जो बंगाली मिठाइयों के बेहद शौकीन हैं, बल्कि वे नए यंगस्टर्स को अपना लक्ष्य बना रहे हैं, जो कुछ अलग खाना पसंद करते हैं।

फंडा यह है कि कारोबारी जगत् में आपके प्रतिद्वंद्वी हो सकते हैं, लेकिन एंट्री पीरियड में उनके साथ सहभागिता कायम करने से दोनों का फायदा होगा।

‘हेल्थ इज वेल्थ’ का नया फंडा

जब भी मैं चेनई या उसके आस-पास के किसी शहर में जाता हूँ तो मेरा वहाँ पर स्थानीय डॉक्टर के पास भी जाना हो ही जाता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि मैं अक्सर बदली आबो-हवा में बीमार पड़ जाता हूँ या कई बार अपने किसी बीमार नाते-रिश्तेदार को देखने के लिए अस्पताल जाना पड़ता है। ऐसे ही एक बार मैं एक केमिस्ट के पास कुछ दवाइयाँ खरीदने गया। इसी दौरान मेरा अपने एक बीमार रिश्तेदार को देखने के लिए अस्पताल भी जाना हुआ; लेकिन दोनों जगहों पर मैंने एक कॉमन उत्पाद पाया। दरअसल जब आप तमिलनाडु में दवा लेने किसी केमिस्ट की दुकान पर जाते हैं तो वह अपनी ओर से उस सूची में एक उत्पाद और जोड़ देता है। मेरा यकीन करें, आप इसके लिए ना नहीं कह पाएँगे। आप चुपचाप उसकी कीमत अदा करेंगे और वहाँ से चले आएँगे। अलबत्ता वह उत्पाद इतना सस्ता भी नहीं है कि जेब पर इससे कोई फर्क ही न पड़े। उसकी कीमत तकरीबन 160 रुपए होगी। यदि आपके पास पैसा है और आपके घर पर वह उत्पाद नहीं है तो आप आखिरकार उसे खरीद ही लेंगे।

ऐसे में कोई आश्वर्य की बात नहीं कि भारत में यह उत्पाद पेप्सी या कोका कोला से ज्यादा बिकता है। यह अकेला उत्पाद अपनी कंपनी के लिए टाटा टी (टाटा ग्लोबल बेवरेजेस लिमिटेड की एक इकाई) के मुकाबले 50 प्रतिशत ज्यादा आय हासिल करता है। यह उत्पाद 138 साल पुराना है, जिसे माल्टेड जौ और भैंस के दूध से बनाया जाता है। इस उत्पाद का नाम है—हॉर्लिंक्स। यदि कोई और उत्पाद यहाँ हॉर्लिंक्स से आगे है तो वह है पारले बिसलरी की पानी की बोतल। एक इंफेट फॉर्मूला के रूप में हॉर्लिंक्स की स्थापना अमेरिका में ब्रिटिश बंधुओं द्वारा 138 साल पहले की गई थी। आगे चलकर यह द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सशस्त्र सेनाओं के बीच काफी लोकप्रिय हुआ। सन् 1948 के लंदन ओलंपिक में भी इसे काफी लोकप्रियता मिली।

हालाँकि यह उत्पाद मुख्यतः बच्चों के लिए है, लेकिन इसकी निर्माता कंपनी ग्लैक्सो वयस्कों के लिए उच्च पोषक तत्त्वों से भरपूर इसका एक और वर्जन बनाती है। इसी तरह गर्भवती व स्तनपान करनेवाली महिलाओं के लिए मदर्स हॉर्लिंक्स भी आता है। सन् 2000 में स्मिथक्लाइन का ग्लैक्सो जैसी बड़ी दवा कंपनी के साथ विलय होने पर यह उत्पाद ग्लैक्सो पोर्टफोलियो का हिस्सा बन गया। जब शेयर बाजार में जबरदस्त उतार-चढ़ाव चल रहा था, तब एक कंपनी जो व्यापक तौर पर स्थिर बनी रही, वह थी ग्लैक्सो। निवेशक इसका कारण यह बताते हैं कि ऐसा इसके नॉन-फार्मास्युटिकल्स उत्पादों की वजह से हुआ।

हालाँकि जब आप इस तथाकथित धारणा की गहराई में जाएँगे तो आपको पता लगेगा कि जिस इकलौते उत्पाद ने इस कंपनी के स्थिर विकास को जारी रखा, वह हॉर्लिंक्स ही है। इसके बाद सेंसोडाइन ट्रूथपेस्ट और ईनो एंटासिड जैसे उत्पादों का नाम आता है। इन सभी को नॉन-फार्मास्युटिकल उत्पादों की श्रेणी में रखा जा सकता है; लेकिन ये सभी आमजन की सेहत संबंधी मामलों से जुड़े हैं।

अब इसने नूडल्स उत्पाद को भी अपना नाम दिया है। ग्लैक्सो के इस उत्पाद को ‘फूडल्स’ कहा जाता है और अब यह कंपनी पाउडर के रूप में आनेवाले बेवरेज का रेडी-टू-ड्रिंक वर्जन तथा रेडी-टू-इंट स्नैक्स भी बाजार में पेश करने की योजना बना रही है।

फंडा यह है कि पुरानी कहावत है ‘हेल्थ इज वेल्थ’, जो हमेशा प्रासंगिक रहेगी। लेकिन इस नए आर्थिक जगत् में यह लोकोक्ति एक नए फंडे के साथ सामने है, जो कहता है कि ‘किसी की हेल्थ आपकी वेल्थ है या सबकी हेल्थ आपकी वेल्थ है।’

खुद तैयार करें अपना कारोबारी माहौल

तीन महीने पहले जब कोका कोला के एकजीक्यूटिव वाइस प्रेसीडेंट एवं चीफ मार्केटिंग एंड कॉमर्शियल ऑफिसर जोसेफ वी. त्रिपोदी अमेरिका से दिल्ली आए तो उन्होंने मुझे बताया कि वे भारतीय बाजार में अपनी मौजूदगी को दोगुना करना चाहते हैं। मैंने उन्हें संदेह की नजरों से देखा, जिसे उन्होंने भाँप लिया। उन्होंने मुझसे पूछा, “क्या आप अपने देश में विद्युत् आपूर्ति की बदहाल दशा के बारे में सोच रहे हैं?” मैंने कहा, “हाँ, बिलकुल। आखिर भारत के गाँवों में कोका कोला कैसे बिकेगा, जब तक इसे आइस बॉक्सों में चिल्ड अवस्था में न रखा गया हो?” यह सुनकर उन्होंने मुसकराते हुए कहा, “आप बस देखते जाइए।” कोका कोला इंडिया के तकनीकी सेवा विभाग के जी.एम. सुनील गुलाटी फिलहाल सोलर कूलर बनाने में लगे हैं, जिसके अगले दो माह में बनकर तैयार होने की उमीद है। इसका मतलब है कि पान की हरेक गुमटी पर कोका कोला को स्टोर करनेवाला ऐसा एक कूलर होगा, जिसके जरिए ग्राहकों को ‘चिल्ड’ अवस्था में यह पीने को मिलेगा और दुकानदार को इसके लिए बिजली कंपनी को कोई बिल भी नहीं चुकाना होगा। इस समूह ने इसका शुरुआती मॉडल तैयार भी कर लिया है। हालाँकि यह कोका कोला के स्टैंडर्ड के हिसाब से थोड़ा ‘डर्टी’ है, लेकिन कंपनी की टीम इसकी डिजाइन व अनुकूलन क्षमता पर काम कर रही है। टीम इस तथ्य पर भी काम कर रही है कि सोलर कूलर संचालन व सुरक्षा संबंधी तमाम जरूरतों पर खरे उतरें।

फील्ड ट्रायल से पहले फिलहाल इसकी तैयारी के अंतिम चरण में बॉटलिंग करनेवाले लोगों और बिजली की किल्लतवाले ग्रामीण रिटेलरों के साथ मिलकर उनकी दिक्कतों व जरूरतों को जाना जा रहा है। उत्तर प्रदेश व बिहार में इसका शुरुआती रिस्पांस बहुत अच्छा रहा है। भारत में सोलर एनर्जी डेवलपर्स अपने प्रोजेक्ट के लिए साइट चुनने से पहले अमूमन ‘नासा’ और उसकी सैटेलाइट इमेजों की ओर रुख करते हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि भारत में भले ही सूरज की रोशनी पर्याप्त मात्रा में अपनी चमक बिखेरती हो, लेकिन प्रोजेक्ट की लोकेशन के लिए सटीक जगह की पहचान करना बहुत जरूरी है, ताकि यह उद्यम आगे अच्छा चलता रहे।

वास्तव में, भारत अगले दो साल में एक सोलर एटलस तैयार करने लायक हो जाएगा। यह मानचित्र सेंटर फॉर विंड एनर्जी टेक्नोलॉजी द्वारा तैयार किया जा सकता है, जो देश को वर्ष 2022 तक 20,000 मेगावाट सौर ऊर्जा की अनुमानित माँग को पूरा करने में मदद करेगा। पहले बिजली के लिहाज से समृद्ध राज्यों

में कोका कोला कंपनी और इसकी प्रतिस्पद्धि पेप्सी कोला ने बिजली से चलनेवाले 'चिल्स' वितरित किए थे, ताकि ग्राहकों को 'चिल्ड' अवस्था में उनका उत्पाद मिल सके। जब वह बाजार संतृप्त होने लगा तो कोका कोला ने नई संभावनाओं की ओर देखते हुए दूर-दराज के क्षेत्रों में विद्युत आपूर्ति शुरू करने के लिए सरकार का इंतजार नहीं किया। उसने अपने सोलर कूलर लाऊ करने का फैसला किया।

गौरतलब है कि हेनरी फोर्ड ने भी अपनी कारें बनाने के लिए गैस स्टेशनों और हाइवे के निर्माण का इंतजार नहीं किया। उन्होंने कारों को लाऊ कर दिया, जिसके चलते सरकार को भी सड़कें बनाने और गैस स्टेशन खड़े करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

सफलता के लिए उत्पाद को कई स्तर पर परखें

अगर हमने शुरूआती दिनों में पावर बार खाई होती तो कई लोगों को यह रास नहीं आती। वह एक स्वादहीन बार थी, जिसे मैट्रेलिक रैपर में बेतुके लोगों के साथ प्रस्तुत किया गया था। इसे सन् 1986 में ब्रायन मैक्सवेल ने कुछ हजार डॉलर लगाकर खड़ी की गई इकाई में तैयार किया था। लॉचिंग के वक्त इसे मिश्रित प्रतिक्रिया मिली। समर्पित खिलाड़ियों को यह पसंद आई, क्योंकि इससे उन्हें प्रतिस्पर्धा के दौरान तुरंत ऊर्जा मिलती थी। बाकी को स्वादहीन होने के कारण इसमें ज्यादा रुचि नहीं थी। मैक्सवेल जानते थे कि उनका उत्पाद शत-प्रतिशत सफल नहीं रहा है। लेकिन उन्हें जो प्रतिक्रिया मिली, उसने उन्हें सुधार करने को प्रेरित किया। उन्होंने पावर बार की सामग्री में बदलाव किया, पैकेजिंग समेत मार्केटिंग की रणनीति बदली, जिससे अपेक्षित परिणाम हासिल हुए। कुछ ही वर्षों में पावर बार 15 करोड़ डॉलर का व्यवसाय करनेवाला ब्रांड हो गया। यहाँ तक कि वर्ष 2000 में नेस्ले ने इसे 35 करोड़ डॉलर में खरीद लिया।

तमाम संस्थाएँ अपने उत्पाद को लॉच करने से पहले उसकी परख कई स्तर पर करती हैं, लेकिन बहुत कम ही ग्राहकों को इस प्रक्रिया में शामिल करती हैं। वास्तव में, रिसर्च एंड डेवलपमेंट एक महँगी प्रक्रिया है। उपभोक्ता की राय के आधार पर किसी उत्पाद को लॉच करने में अच्छा-खासा धन खर्च होता है। यूनिवर्सिटी ऑफ ओरेगॉन के ट्रैक कोच बिल बोवरमैन ने वैफल आयरन से पहले नाइकी जूते तैयार किए थे। आकर्षक न होते हुए भी बोवरमैन और नाइकी के सह-संस्थापक फिल नाइट ने दौड़ने के लिहाज से उपयुक्त और सुविधाजनक डिजाइन खोज निकाली थी। इसके बाद तो यह खिलाड़ियों का पसंदीदा शू ब्रांड बन गया। आज भी नाइकी नए उत्पाद विकसित करने से पहले खिलाड़ियों से उनकी परख करता है। यह परख डिजाइन स्टेज पर की जाती है, ताकि वह उत्पाद खिलाड़ियों की जरूरत पर हर लिहाज से खरा उतर सके।

इस कड़ी में स्टारबक्स को अग्रणी करार दिया जा सकता है। किसी भी नए उत्पाद का लॉचिंग से पहले विद्यमान स्टोर्स में परीक्षण कराया जाता है। परीक्षण इस अंदाज में होता है कि प्रतिस्पर्द्धियों को भनक तक नहीं लगाने पाती कि आखिर स्टारबक्स करने क्या जा रहा है। जब स्टारबक्स ने अपनी इंस्टेंट कॉफी विया लॉच की तो कई विशेषज्ञों को इसकी सफलता पर संदेह था। उन्हें संभवतः यह नहीं मालूम था कि विया को व्यापक पैमाने पर लॉच करने से पहले उसे चुनिंदा ग्राहकों के बीच पेश कर उनका फीडबैक लिया जा चुका है।

इस कवायद से कंपनी को यह विश्वास हो गया था कि वह लोगों को एक सही उत्पाद देने जा रही है। आज यह 18 करोड़ डॉलर का ब्रांड है।

एप्पल ने भी इसी तर्ज पर बेहतरीन उत्पाद पेश किए। कंपनी के सह-संस्थापक स्टीव जॉब्स ने एक बार कहा था, “आप किसी एक समूह को ध्यान में रखकर कोई उत्पाद नहीं बना सकते। जब तक आप व्यापक स्तर पर लोगों को दिखाएँगे नहीं, तब तक पता नहीं चलेगा कि आखिर वे चाहते क्या हैं।” एप्पल ने किसी उत्पाद को पेश करने से पहले उसके प्रोटो टाइप तैयार किए, फिर उन्हें चुनिंदा लोगों को उपलब्ध कराया और उस पर उनकी राय माँगी। इसके बाद अपेक्षित बदलाव के बाद जब उन्हें व्यापक स्तर पर पेश किया गया तो लोगों ने उस उत्पाद को हाथों-हाथ लिया।

उत्पाद ही नहीं, समाधान भी मुहैया कराएँ

चूँहे क्या खाना पसंद करते हैं? इन जीवों को क्या अच्छा नहीं लगता? आप सोच रहे होंगे कि इन बेतुके सवालों का यहाँ क्या मतलब है। लेकिन जरा ठहरिए। मध्य मुंबई के परेल इलाके में स्थित हॉफकिन इंस्टीट्यूट द्वारा इन दोनों सवालों के जवाब खोजने के लिए लाखों रुपए खर्च किए जा रहे हैं। इस रिसर्च को डेनमार्क स्थित रॉबलॉन नामक एक केबल बनानेवाली कंपनी और भारत संचार निगम लिमिटेड (बी.एस.एल.) प्रायोजित कर रहे हैं। ये दोनों कंपनियाँ उक्त प्रश्नों का जवाब पाना चाहती हैं, क्योंकि वे ऐसे कारोबार से जुड़ी हैं, जिसमें इलेक्ट्रिकल केबल के जरिए डाटा ट्रांसफर किया जाता है और चूँहे इन्हें कुतरते हुए उनका काफी मुनाफा हड्डप जाते हैं।

इस अध्ययन का उद्देश्य यह पता लगाना है कि चूँहों को केबल व तारों की ओर कौन सी चीज आकर्षित करती है और चूँहों द्वारा किए जानेवाले लाखों के नुकसान को रोकने के लिए क्या किया जा सकता है। शोधकर्ता चूँहों के इस व्यवहार की गहराई तक जाते हुए यह पता लगाना चाहते हैं कि किस तरह की सतह उन्हें आकर्षित करती है और किस तरह की नहीं। उन्हें दूर रखने के लिए किस गंध का इस्तेमाल किया जा सकता है और यदि केबल्स पर कुछ खास तरह के रसायनों की परत चढ़ाई जाए तो इन्हें कुतरने से चूँहों को मजा नहीं आएगा। इस रिसर्च का केबल निर्माण से जुड़े या केबल के जरिए डाटा ट्रांसफर करनेवाले कॉर्पोरेट्स के लिए काफी महत्व है।

‘एंटी रोडेंट टेस्टिंग ऑफ केबल वायर्स’ के नाम से इस रिसर्च का पहला चरण डेनमार्क में स्थित केबल बनानेवाली कंपनी रॉबलॉन की ओर से करवाया जा रहा है। इसका दूसरा चरण हमारी अपनी पब्लिक सेक्टर दूरसंचार कंपनी भारत संचार निगम लिमिटेड (बी.एस.एल.) की ओर से करवाया जाएगा। मुंबई में चूँहे मारनेवाले (जो इन्हें मारने के लिए टॉर्च और छड़ियों का इस्तेमाल करते हैं) साल भर में तकरीबन 3,00,000 चूँहों को मार डालते हैं। इससे आपको मुंबई में चूँहों की बेतहाशा तादाद का थोड़ा-बहुत अंदाजा हो गया होगा और आप यह भी समझ गए होंगे कि क्यों रॉबलॉन और बी.एस.एल. जैसी कंपनियाँ इस रिसर्च के लिए हॉफकिन को मोटी रकम दे रही हैं। हमारे देश में पाँच तरह के चूँहे पाए जाते हैं—काला चूहा (रेट्स), भूरा चूहा (रेट्स नॉर्वेजिक्स), बंदीकूट (बैंडिकोटा बैंगालेंसिस), जंगली चूहा (बैंडिकोटा इंडिका) और घरों में पाया जानेवाला आम चूहा (मस मस्क्युलस)। इस रिसर्च में इन सभी को शामिल किया गया है। इनमें से समस्त श्रेणियों के चूँहों को पाँच तरह की केबलें एक

महीने तक चबाने के लिए दी गई हैं। हर केबल का एक हफ्ते बाद वजन लिया गया कि इस अवधि में किस चूहे ने इसे कितना कुतरा या चबाया। केबल के हर टुकड़े को जितना नुकसान पहुँचा था, उसे भी सावधानीपूर्वक नोट किया गया। रॉबलॉन महज एक केबल बनानेवाली कंपनी है। उसे इस बारे में परेशान होने की जरूरत नहीं है कि आपके द्वारा इन केबलों को खरीदने के बाद उसका क्या होता है। लेकिन उन्होंने केबल को इस तरह से होनेवाले नुकसान के बारे में गहरी दिलचस्पी ली है और समस्या की गहराई में जाते हुए अपने ग्राहकों की खातिर इसका हल तलाश रहे हैं।

फंडा यह है कि स्थायी कारोबार के लिए महज उत्पाद बेचने के बजाय उससे जुड़ी समस्या का समाधान भी पेश किया जाए तो आपका मुनाफा और बढ़ेगा। कोई उत्पाद चाहे कितनी ही अच्छी क्वालिटी का क्यों न हो, यदि वह ग्राहकों की समस्या का समाधान पेश नहीं कर सकता तो वह बाजार में ज्यादा दिनों तक नहीं टिकेगा।

सहभागी प्रबंधन के जरिए विरोधियों को साथ लाएँ

पिछले दिनों मुंबई में परमेश्वर गोदरेज ने ओप्रा विन्क्रे के स्वागत में अपने घर पर एक शानदार पार्टी दी, जिसमें तीन बार स्थानीय पुलिस द्वारा हस्तक्षेप किया गया। पहली बार तो पुलिस ओप्रा के पहुँचने के पंद्रह मिनट बाद ही वहाँ पहुँच गई थी। पुलिस की हर दबिश के बाद मेजबान ने पाँच-पाँच हजार रुपए का जुरमाना भी अदा किया। रात को दस बजे से थोड़ा पहले ही पार्टी में तेज संगीत बजाए जाने की शिकायतें जुहू पुलिस स्टेशन में आने लगीं। गोदरेज के पड़ोसी अमरीश पटेल (जो विधायक हैं) ने सबसे पहले पुलिस को बुलाया। पुलिस के आने के बाद श्यामक डावर और उनकी नृत्य-मंडली को अपना शो शांतिपूर्ण ढंग से संपन्न कराना पड़ा। पार्टी के ओपनिंग एक्ट का एनर्जी लेवल भले ही थोड़ा कम रहा हो, लेकिन जल्द ही वहाँ बजनेवाला संगीत दोबारा तेज हो गया। स्थानीय पुलिस के पास फिर से शिकायत आई और पहली दबिश के 90 मिनट बाद दोबारा पुलिस पहुँच गई। मामला किसी तरह शांत किया गया। लेकिन रात को डेढ़ बजे फिर पुलिस वहाँ आ धमकी। जब मीडिया ने पुलिसवालों से इस घटनाक्रम के बारे में पूछा तो उनका कहना था कि वे नहीं जानते कि ओप्रा विन्क्रे कौन है और वे सिर्फ स्थानीय रहवासियों की शिकायत पर अपना काम कर रहे थे। देखा जाए तो पार्टी में लगातार व्यवधान डालने के पीछे दो अहम कारण थे—पहला, उनके पड़ोसी और स्थानीय कदावर नेता अमरीश पटेल, जिहें इस पार्टी में नहीं बुलाया गया था। दूसरा कारण था कि सेलिब्रिटी मेहमान की स्वागत पार्टी के बारे में पुलिसवालों को पूर्व सूचना देते हुए उनका सहयोग नहीं माँगा गया। हम कानफोड़ संगीत के बारे में बात नहीं कर रहे हैं, जो कानून के तहत स्वीकार्य नहीं है; हम उन लोगों की बात कर रहे हैं, जो इस घटनाक्रम की शिकायत पुलिस में कर रहे थे।

जब मैं पिरामल ग्रुप के अजय पिरामल के साथ एक प्रोजेक्ट कर रहा था तो उन्होंने मुझसे एक बात कही थी, जो यहाँ भी मौजूद है। हम प्रोजेक्ट के अंतिम चरण में थे और अजय पिरामल को लगा कि उन्होंने किसी भी सीनियर ऑफिसर या मैनेजर से इस प्रोजेक्ट पर विचार-विमर्श नहीं किया है। यहाँ पर यह जिक्र लाजिमी है कि वह पूरी तरह से अजय पिरामल का निजी प्रोजेक्ट था। उन्होंने मुझसे एक मीटिंग बुलाने के लिए कहा, जिसमें कंपनी के सभी सदस्य शामिल हों। मीटिंग में मौजूद सदस्यों के हाथ में उन्होंने अंतिम प्रोजेक्ट रिपोर्ट देने के बजाय इसकी रफ कॉपी दी। मैनेजरों ने इस पर नजर डाली और

कुछ फेर-बदल के सुझाव दिए। मीटिंग के बाद अजय पिरामल ने बदलावों को सम्मिलित करते हुए फाइनल प्रोजेक्ट लाने के लिए कहा। मीटिंग के अगले दौर में अधिकारियों द्वारा बताए गए बदलावों के साथ उन्हें फाइनल प्रोजेक्ट दिया गया, जो हम पहले ही तैयार कर चुके थे। आधे घंटे के भीतर ही प्रोजेक्ट पर सबने अपनी मंजूरी दे दी। मीटिंग के बाद अजय पिरामल ने मुझसे सिर्फ एक बात कही, “जब आपको संस्थान के भीतर विरोधी सुर उठने की उम्मीद हो तो उन्हें भी प्रोजेक्ट में शामिल कर लें। इससे वे भी सहभागी हो जाएँगे और आपका प्रोजेक्ट जल्द ही मंजूर हो जाएगा।” यदि परमेश्वर गोदरेज ने अमरीश पटेल को पार्टी में बुलाया होता तो वह उनकी पार्टी के रंग में भंग डालने का प्रयास नहीं करते।

फंडा यह है कि यदि आपको लगता है कि संस्थान में अनेक विरोधी सुर हैं तो माहौल को रचनात्मक बनाने के लिए सहभागी प्रबंधन की कला को अपनाएँ। ऐसे में कोई आपसी ईर्ष्या या रोंजिश नहीं होगी और हर किसी को लगेगा कि उसने भी प्रोजेक्ट में अपना इनपुट दिया।

‘नुक्कड़’ के नए अवतार का बढ़ता चलन

गली में स्थित उस चाय की दुकान को याद करें, जहाँ पर कई लोग बेंच पर बैठकर चाय या कॉफी की चुस्कियाँ लेते रहते थे और एक व्यक्ति स्थानीय भाषा का अखबार उन्हें पढ़कर सुनाता था, जिसके जरिए उन्हें दिन भर की खबरें मिलती थीं। ‘नुक्कड़’ ऐसी जगह होती है, जहाँ पर लोग अपना टाइम पास करने के लिए इकट्ठा होते हैं। ऐसा इसलिए था, क्योंकि उस समय न तो टी.वी. था और न ही रेडियो और न ही गाँववालों के पास इतने पैसे होते थे कि वे अपने लिए अखबार खरीद सकें। उन दिनों ‘नुक्कड़’ या कहें कि गली के कोने पर दुकान का होना जरूरी होता था।

धीरे-धीरे लोगों की क्रय-शक्ति बढ़ी, रेडियो व टी.वी. घर-घर तक पहुँच गए और चाय व कॉफी पीने की आदत भी धीरे-धीरे कम हो गई। लेकिन हमें इसका एहसास होता, इससे पहले ही ‘नुक्कड़’ ने नया अवतार ले लिया, जो अब न सिर्फ गाँव में बल्कि नगरों-महानगरों व कस्बों में भी वायरस की तरह फैल रहे हैं। अब इन तथाकथित आधुनिक नुक्कड़ पर इकट्ठा होनेवाले लोगों में सफल एकजीक्यूटिव हैं, प्रेजुएशन या पोस्ट प्रेजुएशन कर रहे स्टूडेंट्स हैं।

उनके लिए यह प्राइवेट में बातें करने की जगह है। एकमात्र अंतर यह आया है कि वर्षों पुरानी बेंचों की जगह अब आधुनिक कुर्सियाँ व टेबलें आ गई हैं। अब इसके लिए वातानुकूलित माहौल मिलता है और कोई भी उनसे वहाँ से उठकर जाने के लिए नहीं कहता है। यहाँ यंगस्टर्स घंटों साथ बैठकर अपने पसंदीदा पेय की चुस्कियाँ लेते हुए अपने मोबाइल फोन पर बतियाते रहते हैं और बैठे-बैठे सोचते रहते हैं कि अपना प्रेम-पत्र कैसे लिखा जाए, जो फेसबुक, ट्विटर या एस.एम.एस. के जरिए सामनेवाले तक पहुँचाना है। ये यंगस्टर्स मिलने-जुलने के लिए ऐसी जगह चाहते हैं, जो उनसे हाथ भर की दूरी पर हो, यानी उनके घर या कॉलोनी, कॉलेज या सिनेमा थिएटर या मॉल के नजदीक हो। यहाँ पर यह बताना दिलचस्प होगा कि मॉल में भी जो ग्राउंड फ्लोर से ऊपर की ओर फर्स्ट फ्लोर या सेकंड फ्लोर तक पहुँच जाते हैं, वे भी एक कप कॉफी के लिए या अपने दोस्तों के साथ प्राइवेट बातचीत के लिए नीचे नहीं आना चाहते। वे उसी फ्लोर पर साथ बैठने का अड्डा तलाशने लगते हैं।

इस जरूरत को देखते हुए कैफे कॉफी डे, जिसे लोकप्रिय तौर पर सी.सी.डी. के नाम से जाना जाता है, ने हरेक मेट्रो में अपने आउटलेट्स शुरू किए हैं, जिनका स्लोगन है—‘कॉफी के बीच बहुत कुछ हो सकता है’। यह कंपनी हर जगह मौजूद है। ये आई.आई.एम. के कैंपस में हैं, हीरानंदानी जैसे टाउनशिप में हैं

और विप्रो, टी.सी.एस. तथा इन्फोसिस जैसे ऑफिसों और बड़े अस्पतालों में भी है। उन्होंने व्यस्त हवाई अड्डों को भी नहीं छोड़ा। कुल मिलाकर वे 1,700 से ज्यादा जगहों पर मौजूद हैं। आप उनके वाइस प्रेसिडेंट के, राधाकृष्णन से इस बारे में पूछें और वे आपको बताएँगे कि उनके इस दशक के अंत तक 5,000 आउटलेट्स हो जाएँगे।

सिर्फ सी.सी.डी. ही व्यापक पैमाने पर विस्तार की योजना नहीं बना रही है, दूसरे ब्रांड्स भी राजमार्गों के आजू-बाजू व सड़कों के छोर पर अपने आउटलेट्स खोल रहे हैं। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि आधुनिक पीढ़ी ने नुक्कड़ के इस रूप को स्वीकार कर लिया है।

फंडा यह है कि नुक्कड़ की मानसिकता पहले भी थी और आज भी है। बस, नुक्कड़ में मौजूद सुविधाएँ बदल गई हैं। जब तक इनसान जिंदा है तब तक वह टाइम पास के लिए ऐसी जगहों पर आता रहेगा। यदि आप एक उद्यमी हैं और इस प्रवृत्ति के बारे में समझते हैं तो आपका कारोबार बहुत अच्छा चल सकता है।

कारोबारी सफलता का मंत्र है पुनर्निवेश

दक्षिणी तमिलनाडु में नागेरकोइल से 9 किलोमीटर दूर स्थित थालाकुडी गाँव में शंबगम गणेशन का परिवार रहता था। उनके पास महज आधा एकड़ जमीन थी, जिसकी पैदावार से उन्हें महीने में औसतन 100 रुपए की कमाई होती थी। यह 1960 के दशक की बात है। इतनी आय से गणेशन के आठ भाई-बहनों समेत दस सदस्यीय परिवार का गुजारा बहुत मुश्किल से होता था। भाई-बहनों में चौथे नंबर के गणेशन को याद है कि उन्हें उन दिनों एक दिन छोड़कर एक वक्त का खाना मिलता था। गणेशन ने सोलह साल की उम्र में बतौर मेकैनिक काम शुरू किया। वह रोज अपनी साइकिल से नागेरकोइल जाते और वहाँ 12 रुपए रोज पर ट्रकों की रिपेयरिंग का काम करते। आज सत्तावन वर्षीय शंबगम गणेशन का अपना कारोबार है और उनके पास तकरीबन 2 करोड़ रुपए की प्रॉपर्टी है। कारोबार अच्छा चलने पर उनकी महीने में 2 लाख रुपए तक कमाई हो जाती है। वह 50 लोगों को वेतन देते हैं।

गणेशन बहुत कम समय के लिए स्कूल गए। आर्थिक तंगी के चलते जल्द ही उनका स्कूल छूट गया। सन् 1971 में गणेशन ने खुद अपना कारोबार करने की खातिर गाँव छोड़ दिया। उस वक्त उनकी जेब में सिर्फ एक रुपया था। उसके बाद जो हुआ, वह इतिहास है।

उन्होंने तकरीबन 17 साल तक रिपेयरिंग का काम सीखा और परिवार के लिए अतिरिक्त कमाई करने की खातिर दिन में 12 घंटे तक काम किया, जिसने उन्हें मेकैनिक इंडस्ट्री का डॉक्टर बना दिया। सन् 1986 में उन्होंने अपनी वाहन रिपेयरिंग की शॉप खोली। इसके बाद उन्होंने ट्रकों की खरीद-फरोख्त की ओर कदम बढ़ाए। वह पुराने ट्रक खरीदते, उनकी मरम्मत कर उन्हें नए सिरे से सजाते-सँचारते और पुनः बेच देते। इससे उन्हें अच्छा लाभ मिल जाता। 1990 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था को दुनिया के लिए खोलने के साथ माल भाड़े की दरें बढ़ने लगीं। यह देखते हुए गणेशन ने ट्रांसपोर्ट बिजनेस में उतरने का मन बनाया। इस खातिर उन्होंने महाजन से 25 प्रतिशत ब्याज की दर से रकम उधार ली।

सन् 2004 से उनकी कंपनी गुरुवायूर माथवन लॉरी सर्विस हर साल दो ट्रक खरीदने लगी। यह सिलसिला वर्ष 2008 में मंदी आने तक चलता रहा। फिलहाल उनके पास 15 मल्टी-एक्सल ट्रक हैं। उन्होंने अपने परिवार का सारा कर्जा चुका दिया है, अपने तीनों बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाई है और

नागरकोइल में 2,000 वर्फिट जगह पर अपना आलीशान बँगला बनवाया है। उनके परिवार में तीन कारें हैं और उनका ऑफिस एयर-कंडीशंड है।

गणेशन का कहना है, “आर्थिक उदारीकरण ने मुझे आगे बढ़ने के अवसर मुहैया कराए।” अब वह 7.5 प्रतिशत ब्याज की दर से गाड़ियाँ फाइनेंस करते हैं। गणेशन के लिए यहाँ तक पहुँचना आसान नहीं था। इस राह पर चलते हुए दस में से नौ लोग दिवालिया हो जाते हैं। लेकिन गणेशन को सफलता मिली, क्योंकि उन्होंने कमाए धन का कारोबार में पुनर्निवेश किया, संचालन प्रक्रियाओं पर करीबी निगाह रखी और अपने ट्रकों को हमेशा दुरुस्त हालत में रखा, जिससे उनके मेंटेनेंस पर ज्यादा खर्चा न हो। यह तकनीक उन्होंने मैकेनिक रहते हुए सीखी थी। इस तरह वह अधिकतम रिटर्न हासिल कर पाए।

फंडा यह है कि जब आपको अपने कारोबार से कुछ रिटर्न मिलने लगे तो इसका इस तरह से पुनर्निवेश करें कि वह ज्यादा-से-ज्यादा बढ़े। इसके अलावा यदि आपका विजेनेस ज्यादातर मशीनों पर टिका है तो जरूरी है कि उन्हें हमेशा दुरुस्त हालत में रखा जाए, ताकि इनके मेंटेनेंस पर ज्यादा खर्चा न करना पड़े।

बात ऐसी हो, जो सामनेवाले को साथ जोड़ सके

एक विज्ञापन में जब कंजूस दोस्त पुलिस स्टेशन में इस उम्मीद से मिस कॉल देता है कि पुलिसवाले वापस फोन कर समस्या के बारे में पूछेंगे और उनकी मदद के लिए आएँगे तो इस दृश्य को देखकर आपकी हँसी रोके नहीं रुकती, क्योंकि हरेक की जिंदगी में ऐसा कोई दोस्त होता ही है, जो मोबाइल से कॉल करने में कंजूसी बरतता है। इसी कंपनी ने कॉलेज जानेवाले छात्र-छात्राओं को ध्यान में रखकर एक गीत रचा—‘हर एक फ्रेंड जरूरी होता है’, जो युवाओं के बीच काफी लोकप्रिय है।

एक उम्रदराज अमीर पुरुष (जिसकी शादी को 30 साल से ऊपर हो चुके हों) को अपनी पत्नी को ज्वैलरी भेंट देते समय कैसी अजीब स्थिति का सामना करना पड़ता है, यह आप एक ब्रांडेड ज्वैलरी उत्पाद के विज्ञापन में अमिताभ व जया बच्चन के बीच की कैमिस्ट्री में देख सकते हैं। इस विज्ञापन में अमिताभ बच्चन जया को ज्वैलरी भेंट करने के बाद कैमरे की ओर मुड़ते हैं और जया द्वारा की गई टिप्पणी पर अपनी भाव-भंगिमा के जरिए आश्चर्य प्रकट करते हैं। यदि आप उनकी उम्र के हैं तो अपनी पत्नी को देखकर आपके मन में भी कुछ ऐसे ही ख्याल आते होंगे। इस लिहाज से यह विज्ञापन उस आयु वर्ग के लोगों के साथ तादात्य स्थापित कर लेता है।

जब अन्ना हजारे पिछले नौ महीनों में अपने तीन अनशन के जरिए लोगों को भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे, तब एक चाय कंपनी ने अपनी विज्ञापन मुहिम के जरिए ऐसे तमाम युवाओं का ध्यान खींचा, जो सड़कों पर, समाज में और कैंपसों में भ्रष्टाचार के खिलाफ जंग लड़नेवालों के साथ थे। एक सेलफोन कंपनी के विज्ञापन में रणवीर कपूर द्वारा किए गए स्टैंडअप कॉमिक एक्ट में ‘कीप इट सिंपल सिली’ जोक्स को इसकी टैगलाइन की तरह काफी पसंद किया गया। ये जोक्स काफी फनी थे, जो युवाओं के साथ कनेक्ट होते थे, क्योंकि इन्हें अपने घर पर या बाहर इसी तरह की परिस्थितियों को फेस करना पड़ता है।

इसके अलावा कोई कुंभ के मेले में बिछुड़े रमेश और सुरेश नामक दो जुड़वाँ भाइयों के मिलन की कहानी कैसे भूल सकता है। जाहिर तौर पर यह बहुत पुराना फॉर्मूला है, लेकिन इसकी पैकेजिंग आपके चेहरे पर मुसकान ले ही आती है। अलबत्ता यह कोई ऐसी कहानी नहीं है, जो रोज घटित होती हो; लेकिन

आस-पास का माहौल और टी.वी. सोप्स आपको और हमें लगातार इस तरह की घटनाओं के बारे में याद दिलाते रहते हैं। इस कड़ी में उनका ताजा विज्ञापन ‘पिताजी की पतलून’ वाला है, जो सोने पर सुहागा जैसा है।।

यहाँ पर जिन गाथाओं का जिक्र है, वैसा कई लोगों की जिंदगी में होता है। इस तरह के विज्ञापन दर्शकों के बीच इसलिए लोकप्रिय होते हैं, क्योंकि ये उनकी रोजमर्रा की जीवन-शैली को रोचक अंदाज में पेश करते हुए उनके साथ जुड़ाव कायम करने में कामयाब होते हैं। इस तरह वे न सिर्फ अपने लक्षित दर्शक वर्ग का ध्यान खींचते हैं, बल्कि एक समय के बाद उनकी बोलचाल की भाषा का हिस्सा भी बन जाते हैं।

ई.एम. फॉस्टर अपनी पुस्तक ‘पैसेज टू इंडिया’ में कहते हैं कि जब आप दुनिया के साथ जुड़ते हैं तो उसे समझ पाते हैं। ये विज्ञापन आम लोगों के साथ इसलिए जुड़ाव कायम कर पाए, क्योंकि इसके निर्माता यह जानते थे कि उनका लक्षित दर्शक वर्ग कैसे रहता है, उसे क्या पसंद है और जिंदगी में किस तरह की समस्याओं से उसे गुजरना पड़ता है।

फंडा यह है कि यदि आप विज्ञापनों पर भारी धनराशि खर्च करते हैं तो पहले यह सुनिश्चित करें कि आपके द्वारा संप्रेषित हर शब्द लक्षित दर्शक वर्ग को साथ जोड़े, अन्यथा आपका खर्च करना व्यर्थ है।

तेजी से बढ़ते बिजनेस के लिए

बेहतर तालमेल जरूरी

सब यही सोचते थे कि यह पान की एक बड़ी दुकान है, क्योंकि किसी सामान्य पान की दुकान से यह करीब दोगुना लंबा-चौड़ा था। जब यहाँ 8 रुपए में गरमागरम दक्षिण भारतीय फिल्टर कॉफी मिलनी शुरू हुई तो यह आई.टी. क्षेत्र में काम करनेवाले युवाओं की पसंदीदा जगह बन गया। काम के बेतरतीब समय के चलते उन्हें हर समय कॉफी पीने की तलब होती थी। हम दुकान में कोई कुरसी या बेंच नहीं थी, जहाँ बैठकर आराम से कॉफी की चुस्कियाँ ली जा सकें। नवंबर 2009 में इस छोटी सी कॉफी शॉप की शुरुआत दक्षिणी बैंगलुरु के गांधी बाजार इलाके में हुई थी। गांधी बाजार में सड़क के किनारे पंक्ति में दुकानें बनी हैं और ‘हाट्टी कापी’ नाम की इस दुकान में रोजाना 30 से 50 कप कॉफी बिक जाती थी। दुकान के मालिक यू.एस. महेंद्र हर प्राहक से बात करते और उनसे पूछते कि उन्हें और किस चीज की जरूरत है। वे हर प्राहक के आने-जाने का समय नोट करते कि वे कुछ स्नैक्स लेना पसंद करेंगे या नहीं। दुकान के ग्राहकों में अधिकतर आई.टी. पार्क में काम करनेवाले युवक होते थे, जो नाइट शिफ्ट में काम करने के बाद सुबह 6.30 बजे सोने की तैयारी में होते थे। उन्हें उस समय केवल एक प्लेट ताजा दक्षिण भारतीय ब्रेकफास्ट की जरूरत महसूस होती थी, जो ज्यादा भारी नहीं हो, लेकिन इतना हल्का भी न हो जिससे उनकी नींद में खलल पड़े। प्लेट में खाने की मात्रा और उसकी कीमत दोनों ही आई.टी. पेशेवरों के लिए मुफीद हों। 40 वर्षीय महेंद्र ने एक अलग तरकीब सोची। उन्होंने पैकेज डील के तहत 12 रुपए में ताजा उपमा या खारा बाघ के साथ कॉफी उपलब्ध कराने का फैसला किया। इसके बाद तो उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। दुकान की रोजाना बिक्री 30 से 50 कप से बढ़कर 45 से 50 हजार कप प्रतिदिन पहुँच गई। पाँच रुपए कीमत में तीन-चौथाई कप कॉफी का उनका आइडिया भी युवाओं के बीच खूब लोकप्रिय हो गया। गांधी बाजार में अब वह दुकान नहीं है, लेकिन यह ब्रांड 27 आउटलेट्स के चेन में तब्दील हो चुका है। बैंगलुरु, मंगलौर तथा हैदराबाद शहरों के अलावा बैंगलुरु और हैदराबाद हवाई अड्डे तथा कुछ आई.टी. कंपनियों के कैंपस में भी ‘हाट्टी कापी’ की दुकानें हैं। ये दुकानें 100 से 250 वर्ग फीट क्षेत्र में फैली हैं। कॉफी के एक कप की कीमत इन दुकानों में 8 रुपए, जबकि एयरपोर्ट पर 15 रुपए होती है। बैंगलुरु एयरपोर्ट पर स्थित आउटलेट पर हाल ही में इन्फोसिस के संस्थापक एन.आर. नारायण मूर्ति भी आए थे।

हाटी कापी की शुरुआत करने से पहले महेंद्र अपने गृह नगर कर्नाटक के हासन में कॉफी (कॉफी बीन्स) का व्यवसाय करते थे। आज उनके आउटलेट में करीब 120 लोग काम करते हैं और वे कर्नाटक के चिकमंगलूर जिले से कॉफी (कॉफी बीन्स) की खरीदारी करते हैं। उन्होंने एक लाख रुपए के निवेश के साथ इसकी शुरुआत की थी, जो आज बढ़कर 2 करोड़ रुपए हो चुका है। पिछले वित्तीय वर्ष में कंपनी का कुल टर्नओवर करीब 7 करोड़ रुपए था और सीमित बाहरी खर्चों के चलते अब कंपनी मुनाफा कमाने लगी है। उन्होंने बाहरी खर्चों को नियंत्रण में रखते हुए सावधानीपूर्वक विस्तार की रणनीति अपनाई। उन्होंने विज्ञापन पर कोई खर्च नहीं किया और उत्पाद की गुणवत्ता ही कंपनी के विस्तार का मुख्य आधार है।

कंपनी फिल्टर कॉफी बनाने के लिए कॉफी लैब द्वारा निर्धारित सभी मानकों का पालन करती है। कॉफी लैब देश भर में कॉफी की खेती और इसके रिटेल व्यवसाय को सर्टिफाई करने का काम करती है। इसकी मुखिया भारत की पहली महिला कॉफी टेस्टर सुनालिनी मेनन हैं। कंपनी इस साल चेन्नई शहर के आसपास तथा यहाँ बन रहे हवाई अड्डे पर 13 नए आउटलेट्स खोलने की योजना बना रही है।

फंडा यह है कि यदि आप सही कीमत और गुणवत्ता के साथ दूसरे उत्पादों का सही तालमेल करें तो आपको विज्ञापन पर कोई खर्च करने की जरूरत नहीं होती।

त्योहारों से जुड़े कारोबार में अपार संभावनाएँ

दुनिया की कुल आबादी के 17.5 प्रतिशत हिस्सेवाला पृथ्वी पर ऐसा कौन सा देश होगा, जहाँ 700 से ज्यादा त्योहार करोड़ों लोगों द्वारा मनाए जाते हैं। भारत के अलावा दूसरे किसी देश की यह खासियत नहीं है। लेकिन इसके बावजूद हम इसका फायदा नहीं उठा पा रहे। चीनी लोगों को यह बात समझ में आ गई है और वे इस साल हमारे बाजार में जबरदस्त मुनाफा कमा रहे हैं। होली से संबंधित जो चीजें बाजार में बिक रही हैं, उनमें हर एक भारतीय उत्पाद के मुकाबले चीन में बने 19 सामान हैं। मतलब यह कि भारतीय और चीनी उत्पादों का अनुपात 1:19 है। इसका खुलासा एसोचैम सोशल डेवलपमेंट फाउंडेशन (ए.एस.डी.एफ.) द्वारा किया गया है। ए.एस.डी.एफ. ने वर्ष 2013 के जनवरी और फरवरी महीनों में इलाहाबाद, आगरा, हाथरस, मथुरा, वृदावन, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, कानपुर, लखनऊ, वाराणसी और पटना में होली के लिए रंग बनानेवाले उत्पादों तथा दुकानदारों के बीच एक सर्वे किया था, जिसमें यह नतीजा सामने आया। सर्वे में यह भी पता चला कि चीनी उत्पादों के बढ़ते आयात के चलते पिछले तीन साल में करीब 1,000 छोटे और मझोले उत्पादकों को अपना काम बंद करना पड़ा है।

इनमें से अधिकांश इलाहाबाद, आगरा, हाथरस, मथुरा, वृदावन, दिल्ली, कानपुर, लखनऊ तथा पटना के हैं। पिछले वर्ष होली के दौरान बिकनेवाले सामानों में भारतीय और चीनी उत्पादों का अनुपात 4:1 था, जो अब 19:1 हो गया है। 20 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रहा होली से संबंधित उत्पादों का बाजार इस साल 15 हजार करोड़ रुपए के आँकड़े को छू चुका है।

पिछले साल यह आँकड़ा 12 हजार करोड़ रुपए था। गौर करनेवाली बात यह है कि आँकड़े हमारे पक्ष में हैं, लेकिन हम इसका फायदा नहीं उठा पा रहे। दूसरे त्योहारों की तरह होली में भी बाजार चीन में बनी पिचकारियों से पटा हुआ है। चीन में बने रंगों और पिचकारियों की भरमार के कारण कई छोटी और मझोली भारतीय कंपनियों का व्यवसाय काफी कम हो गया है।

सर्वे के नतीजे यह भी बताते हैं कि इसके चलते 8 से 10 लाख अंशकालिक और पूर्णकालिक कामगार अपनी आजीविका खो चुके हैं। इस श्रेणी के लोग बैंकों से लिया कर्ज भी नहीं चुका पा रहे, हालाँकि इनकी वास्तविक संख्या के बारे में सर्वे में कुछ नहीं बताया गया है।

भारत में बननेवाली पिचकारियों में न तो कोई नयापन होता है और न ही उनकी फिनीशिंग पर खास ध्यान दिया जाता है। बच्चे चीन में बनी पिचकारियों की ओर आकर्षित होते हैं, जबकि भारतीय पिचकारियों की माँग काफी कम है।

होली का पर्याय मानी जानेवाली गुद्धियाँ की भी आयातित प्रजातियाँ मुंबई जैसे शहरों में पहुँच चुकी हैं। गेहूँ के आटे से बननेवाली साधारण गुद्धियाँ अब चॉकलेट-कोटेड और काजू की बनी गुद्धियाँ में तब्दील हो चुकी हैं। ऑरंज फ्लेवरवाली गुद्धियाँ सबसे पहले नागपुर में बनाई गई थीं और यह आयातित उत्पादों की चुनौती से दूर है। हालत यह हो गई है कि अलग-अलग आकार की परंपरागत, लेकिन आयातित गुद्धियों का स्वाद लिये बिना होली अधूरी लगने लगी है।

एक ओर हम जहाँ त्योहारों के दौरान पानी के दुरुपयोग को कम करने की चिंता में व्यस्त हैं, दुनिया भर के उत्पादक हमारे त्योहारों से जुड़ी चीजों को बाजार में पहुँचाकर खूब मुनाफा कमा रहे हैं।

इसके चलते हमें आर्थिक नुकसान तो उठाना पड़ ही रहा है, कई परिवारों को अपनी आजीविका से हाथ घोना पड़ा है। मुश्किल परिस्थितियों के दौरान नई शुरुआतों के द्वारा व्यवसाय को टिकाऊ बनाए रखना अर्थव्यवस्था के लिए जरूरी है।

फंडा यह है कि त्योहार हमारी संस्कृति का अहम हिस्सा हैं। नए तरीकों को आजमाकर त्योहारों के लिए उत्पादों को सरता और आकर्षक बनाना टिकाऊ व्यवसाय के लिए जरूरी है।

टिकाऊ बिजनेस के लिए उपभोक्ताओं का मिजाज जानना जरूरी

कुछ महीने पहले संगठित रिटेल क्षेत्र की कंपनियाँ अपने स्टोर्स का मुनाफा बढ़ाने के लिए स्टोर मैनेजर्स को नए-नए पदनाम और बेहिसाब वेतन का पुरस्कार दे रही थीं। रिटेल क्षेत्र की बड़ी कंपनियाँ स्टोर मैनेजर्स, जिनका मुख्य काम ग्राहकों की भीड़ को आउटलेट में आने और ज्यादा-से-ज्यादा खरीदारी के लिए प्रेरित करना है, को लुभाने के लिए हरसंभव हथकंडे आजमा रही थीं। यह आउटलेट की बिक्री को बढ़ाने की एक रणनीति थी। टॉमी हिलफिगर अपने 120 से ज्यादा स्टोर मैनेजर्स को प्लेजर कम वर्क ट्रिप पर कोलंबो लेकर गई। फ्यूचर ग्रुप ने उन्हें कर्ता (परिवार का मुखिया) नाम दिया और सैलरी में इजाफा किया, जबकि पिज्जा हट और मेट्रो शूज ने आउटलेट की कमाई का एक हिस्सा उन्हें देने का फैसला किया। वीडियोकॉन ने स्टोर मैनेजर्स को उत्पादों की कीमत निर्धारित करने के अलावा बिक्री बढ़ाने के लिए स्थानीय स्तर पर मार्केटिंग की रणनीति अपनाने की आजादी दी। जबकि चर्चाओं पर भरोसा करें तो बुडलैंड ने उन्हें वह सबकुछ दिया, जिसकी माँग उन्होंने की। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि रिटेल क्षेत्र में बड़े नामों के प्रवेश का अंदाजा लगाते हुए कंपनियों ने सोचा कि आनेवाले दिनों में स्टोर मैनेजर्स की माँग बढ़ेगी और उनके छोड़कर जाने से बिक्री पर बुरा असर पड़ेगा। इधर रिटेल बाजार को इसकी भनक भी लग चुकी थी कि सरकार खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश की अनुमति देने का मन बना रही है। लेकिन स्थितियाँ पूरी तरह से पलट गईं। सन् 2012 के 12 महीनों में तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था में शहरी उपभोक्ताओं के खर्च में कमी दर्ज की गई और पिछले सितंबर महीने में खपत का स्तर बीते 8 सालों में सबसे कम रहा।

सरकार ने तमाम विरोधों को पीछे छोड़ते हुए देश में विदेशी सुपर मार्केट्स को आने की इजाजत तो दे दी, लेकिन एक भी कंपनी ने इसके लिए आवेदन नहीं किया। वे कोई कदम उठाने से पहले स्थिति और स्पष्ट होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सूक्ष्म औद्योगिक क्षेत्र से 30 प्रतिशत माल खरीदने की बाध्यता और आधारभूत संरचना पर कम-से-कम 5 करोड़ डॉलर के निवेश की अनिवार्य शर्त बड़े खिलाड़ियों को भारतीय बाजार में प्रवेश से रोक रही है। फैशन और इलेक्ट्रॉनिक्स इंडस्ट्री किसी भी हाल में तीन साल में 5 करोड़ डॉलर का निवेश नहीं कर सकती, क्योंकि फिलहाल देश में इन सामानों के लिए आधारभूत संरचना है ही नहीं। इस्तेमाल के लिए तैयार इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद और कपड़े चीन, ताईवान और हांगकांग जैसे उत्पादक देशों से आयात किए जाते हैं। इस

बीच सन् 2012 की आखिरी तिमाही (अक्टूबर-दिसंबर) में कंपनियों ने विज्ञापन मद में अपने खर्च को बढ़ा दिया। इन तीन महीनों में आई.टी.सी. ने 1,431 करोड़, जबकि हिंदुस्तान यूनिलीवर लिमिटेड (एच.यू.एल.) ने 822 करोड़ रुपए विज्ञापनों पर खर्च को बढ़ा दिया। यह उनकी कुल बिक्री का 12 से 18 प्रतिशत के बीच है। एच.यू.एल. की बिक्री में 5 प्रतिशत, जबकि आई.टी.सी. की बिक्री में 6 प्रतिशत का इजाफा दर्ज किया गया। मैरिको, गोदरेज, बजाज कॉर्पोरेशन, डाबर और डाबर इंडिया जैसी कंपनियों ने भी अपनी कुल बिक्री का 10 से 14 प्रतिशत तक विज्ञापन पर खर्च किया। हालाँकि इस अनुपात में उनकी बिक्री में कम वृद्धि दर्ज की गई। उनकी बिक्री में वृद्धि का आँकड़ा 4 प्रतिशत से भी कम रहा। उपभोक्ता उत्पाद विशेषकों का मानना है कि उपभोक्ताओं की जेब पर बढ़े बोझ के चलते माँग, खासकर डिस्क्रीशनरी आइटम्स (गैर-जरूरी उत्पाद) की माँग में कमी आई है।

डिपार्टमेंटल स्टोर्स में आमतौर पर 30 प्रतिशत जगह आवश्यक उत्पादों के लिए होती है, जबकि 70 प्रतिशत जगह में डिस्क्रीशनरी आइटम्स रखे जाते हैं। यदि डिस्क्रीशनरी आइटम्स की बिक्री में कमी आती है तो स्टोर के लिए इस 70 प्रतिशत जगह की उत्पादकता काफी कम हो जाती है। राम चरण जैसे मैनेजमेंट विशेषज्ञों का मानना है कि स्टोर मैनेजर्स से किसी चमत्कार की उम्मीद करना प्रबंधन की मूर्खता है, क्योंकि वैश्विक स्तर पर माहौल अनुकूल नहीं है। लेकिन भारतीय उद्यमी ज्यादा उत्साहित हो गए और वेतन के मद में बेहिसाब खर्च कर डाला।

फंडा यह है कि उपभोक्ताओं का मिजाज जाने वाले वेतन और विज्ञापन के मद में बेहिसाब खर्च करना आत्महत्या करने जैसा है। कर्मचारी और कम्युनिकेशन कितने भी बेहतर क्यों न हों, यदि उपभोक्ताओं का मूड ठीक न हो तो ये किसी काम के नहीं होते। यही कारण है कि उपभोक्ताओं को राजा कहा जाता है।

अच्छी तरह योजना बनाएँ तो आप कभी असफल नहीं होंगे

वेस्ट मैनेजमेंट इनकॉर्पोरेशन अमेरिका के ह्यूस्टन में स्थित एक कंपनी है। कंपनी के कामकाज का तरीका हमारे यहाँ के रद्दीवालों जैसा है। कंपनी दरअसल कचरे को जमा कर उसका निष्पादन करती है; लेकिन इसकी कार्यशैली बेहद संगठित और दायरा काफी विस्तृत है। यही कारण है कि यह फॉर्च्यून 500 कंपनियों में शामिल है।

32 वर्षीय जोसेफ जेगन कंप्यूटर एप्लिकेशन में मास्टर की डिग्री प्राप्त हैं और चेन्नई की कई मल्टीनेशनल आई.टी. कंपनियों में काम कर चुके हैं। उनकी 28 वर्षीया पत्नी सुजाता भी एम.सी.ए. गेरजुएट हैं और जोसेफ की ही तरह नौकरी करती हैं। पति-पत्नी के कामकाजी होने के चलते उनके घर में रद्दी खूब जमा थी। लेकिन जोसेफ के पास एक तो समय की कमी थी और दूसरी उन्हें रद्दी बाहर ले जाकर बेचने में शर्मिंदगी महसूस होती थी। कई उच्चवर्गीय सोसाइटीज में रद्दीवालों को प्रवेश करने की अनुमति नहीं होती। उनके मन में एक विचार आया। जोसेफ ने सोचा कि उनकी ही तरह कई और भी लोग होंगे, जिन्हें रद्दी बाहर लेकर जाने में शर्म आती होगी। यही सोचकर उसने रद्दीवाला बनने का फैसला कर लिया। उन्होंने इंटरनेट पर ऐसी कंपनियों को तलाशा तो उन्हें अमेरिका की इस कंपनी के बारे में पता चला। उन्होंने भारत में ऐसी ही कंपनी बनाने का फैसला कर लिया।

नवंबर 2010 में जोसेफ ने कुप्पाथोट्टी.कॉम नाम की कंपनी की शुरुआत की। उन्होंने दो वैन खरीदीं, कुछ युवकों को नियुक्त किया और आसपास के इलाकों में पैफ्लेट बाँटकर 100 कस्टमर्स की लिस्ट तैयार कर ली। धीरे-धीरे उन्होंने चेन्नई के सबसे पॉश इलाकों, जैसे—अशोक नगर, कलाङ्गर, करुणानिधि नगर आदि में कंपनी का विस्तार कर लिया। कस्टमर केयर फोन नंबर्स और ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन जैसी सुविधाओं की शुरुआत हुई। ऐसी व्यवस्था की गई कि एक बार रजिस्ट्रेशन कराने के बाद हर 30 या 45 दिन में रद्दीवाला आपके घर या कॉलोनी में आ जाएगा।

इस कंपनी की कार्य-प्रणाली कुछ ऐसी है। लॉगइन करने बाद आप रद्दी सामानों की लिस्ट बताएँगे और कंपनी से उसे ले जाने का आग्रह करेंगे। इसका मतलब यह है कि आप कंपनी को घर आकर रद्दी जमा करने या फिर आपसे फोन पर संपर्क स्थापित करने या फिर आपसे फोन पर संपर्क स्थापित करने

की अनुमति दे रहे हैं। कंपनी दूसरे रद्दीवालों की तुलना में 30 से 35 प्रतिशत तक ज्यादा कीमत का भुगतान अपने ग्राहकों को करती है। इसकी वजह यह है कि वह सीधे रद्दी के फाइनल यूजर से डील करती है और इस प्रक्रिया में दो स्तरों पर मौजूद बिचौलियों के लिए कोई जगह नहीं होती। बड़े पैमाने पर संचालित होनेवाले हाइपर स्टोर्स की तरह, जो सीधे उत्पादकों और किसानों से माल खरीदते हैं, यह कंपनी भी रद्दी को उसके अंतिम उपयोगकर्ता को बेचती है और इससे होनेवाली अतिरिक्त आय उपभोक्ताओं को देती है। यूनिफॉर्म पहले कंपनी के प्रशिक्षित कर्मचारी रद्दी जमा करने के दौरान ही आइटम्स को अलग कर लेते हैं, जिससे गोदाम पर लाने के बाद इसके लिए एक अलग टीम की जरूरत भी नहीं होती।

फिलहाल कंपनी की कलेक्शन टीम में 21 सदस्य हैं। दो लोग कॉल सेंटर को सम्भालते हैं। सुजाता कंपनी की मैनेजिंग डायरेक्टर हैं, जबकि खुद जोसेफ ग्राहकों की संख्या बढ़ाने तथा पिकअप वैन्स और कलेक्शन बॉयज के बीच तालमेल बिठाने में लगे रहते हैं। कंपनी का मंथली टर्नओवर 3 लाख रुपए है और अगले छह महीनों में इसके दोगुना हो जाने की उम्मीद है। उनके पास निवेशकों के प्रस्ताव आने भी शुरू हो गए हैं; लेकिन जोसेफ और सुजाता का पहला लक्ष्य शहर के 70 प्रतिशत इलाकों में अपने काम का विस्तार करना है। इसके बाद वे दूसरे शहरों में अपनी पहुँच बनाने के लिए अच्छे और बड़े निवेशकों की मदद ले सकते हैं।

फंडा यह है कि रद्दी भी आपको लखपति बना सकती है, बशर्ते आप अच्छी तरह से योजना बनाएँ और फिर उतने ही अच्छे तरीके से उसका कार्यान्वयन करें।

बिजनेस का नया नुस्खा है किस्त

दुनिया के जाने-माने प्रबंधन विशेषज्ञ पीटर ड्रकर ने कहा था कि यदि लोग मक्खन को खरीद नहीं सकते तो उसे टुकड़ों में बाँट दो। उस समय बहुत कम लोगों ने उनकी इस बात को गंभीरता से लिया था। मगर आज हर कोई इसी रास्ते पर चल रहा है।

किस्त जैसा शब्द पंसारी, दूधवाले से शुरू होकर आवास, फर्नीचर, दोपहिया व चारपहिया वाहनों से लेकर इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों तक पहुँच गया। अब तक यह बैंकरों के लिए अच्छा था, क्योंकि वे किसी के द्वारा मासिक किस्त अदायगी में चूक करने पर उसके घर जाकर सामान उठा सकते थे। मगर जब किस्त विदेश में छुट्टियाँ मनाने जैसे क्षेत्रों तक जा पहुँची तो इसने इंडस्ट्री को भी घुमा दिया। किस्त का विकल्प जाहिर तौर पर प्राहक की क्रेडिट रेटिंग के आधार पर तय होता था। लेकिन अब किस्तों का बुखार हृदय की शल्य चिकित्सा, बाईपास सर्जरी, दिल में पेसमेकर बिठाने इत्यादि तक भी पहुँच गया है। इनके लिए किस्तें जरूरी हैं, क्योंकि इसमें आपका काफी पैसा खर्च होता है और कोई आम व्यक्ति ऐसा खर्च एक साथ वहन नहीं कर सकता, खासकर तब जबकि वह जिंदगी और मौत के बीच झूल रहा हो। इसके लिए 75,000 रुपए से लेकर 6 लाख रुपए तक का कर्ज मुहैया करानेवाली वित्तीय कंपनियाँ 10 प्रतिशत की दर से ब्याज लेती हैं और इस कर्ज को आपको 12 महीनों में एक समान मासिक किस्तों में चुकाना होता है। यह गरीब व मध्यम वर्ग के लोगों के लिए सुपर-स्पेशियलिटी ट्रीटमेंट को सुलभ बनाने का एक तरीका है।

कर्जदाता कंपनी द्वारा परिवार के कमाऊ सदस्य का एक साइकोमेट्रिक टेस्ट लेने के बाद चिकित्सकीय उपचार के लिए कर्ज दिया जाता है। यह टेस्ट यह देखने के लिए लिया जाता है कि परिवार समय पर कर्जराशि के पुनर्मुग्धतान के प्रति कितना इच्छुक व गंभीर है। यहाँ तक तो ठीक है। लेकिन अब अचानक किस्त का कारोबार एनुअल मेंटेनेंस कांट्रैक्ट (जिसे लोकप्रिय तौर पर ए.एम.सी. के नाम से जाना जाता है) तक जा पहुँचा है। एक सामान्य घर इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स की संख्या बढ़ने के साथ ए.एम.सी. का आँकड़ा दहाई को छूने लगा है। बड़े परिवारों के संदर्भ में तो ए.एम.सी. की संख्या और भी अधिक है। आज एक सामान्य घर में कम-से-कम दो एयर कंडीशनर, एक फ्रिज, एक माइक्रोवेव ओवन, एक कंप्यूटर, दो लैपटॉप, पानी का फिल्टर, फर्नीचर व टी.वी. (कमरों की संख्या के हिसाब से) वगैरह तो होते ही हैं। और वर्ष की शुरुआत से ही इन सबके लिए ए.एम.सी. शुरू हो जाता है।

मुंबई की अनेक कोऑपरेटिव सोसाइटियों में प्लंबिंग व इलेक्ट्रिकल फॉल्ट के संदर्भ में भी ए.एम.सी. होने लगा है। प्लंबर साल भर में किसी भी तरह के पाइपलाइन संबंधी कार्य के लिए सालाना 1,200 रुपए शुल्क लेता है। इस कॉण्ट्रैक्ट पर वह साल में 12 बार आपके यहाँ बगैर किसी सर्विस चार्ज के काम करेगा और 100 रुपए से कम कीमतवाले पार्ट्स, जैसे कि प्लग, वॉशर इत्यादि मुफ्त मुहैया कराएगा।

हालाँकि पाइपलाइन और नल जैसे अन्य पार्ट्स के लिए आपको अलग से भुगतान करना होगा। इलेक्ट्रिशियन आपको थोड़ा सस्ते में मिल जाता है। वह सालाना 1,000 रुपए शुल्क के बदले में आपकी तमाम कंप्लेंट्स बगैर सर्विस चार्ज के अटेंड करता है। हालाँकि पार्ट्स के लिए आपको अलग से भुगतान करना होता है। इससे मुंबई जैसे महानगर में फ्लैट मालिकों की कई समस्याएँ हल हो गई हैं, क्योंकि वहाँ इमरजेंसी में किसी प्लंबर या इलेक्ट्रिशियन की सेवाएँ पाना पहाड़ चढ़ने जैसा है। भरोसेमंद प्लंबरों और इलेक्ट्रिशियनों की कमी ने इन दोनों क्षेत्रों से जुड़े प्रोफेशनल्स के लिए ए.एम.सी. को एक बिकनेवाला उत्पाद बना दिया है। ए.एम.सी. की बढ़ती संख्या के साथ सेवा-प्रदाता अब इसका शुल्क चार से छह किस्तों में लेने के लिए राजी हैं।

फंडा यह है कि अगर ग्राहक एकमुश्त भुगतान करने में सक्षम नहीं है तो आप उसे समान मासिक किस्तों (ई.एम.आई.) में भुगतान करने का विकल्प दे सकते हैं। बढ़ती लागत के इस परिदृश्य के साथ स्थायी कारोबार के लिए किस्त का विकल्प एक आकर्षक संभावना है। यह किसी भी कारोबार में हो सकता है।

मॉल मैनेजमेंट से ज्यादा मुश्किल है मंडी मैनेजमेंट

मध्य प्रदेश के सीहोर जिले में भोपाल-इंदौर हाइवे पर आषा नामक छोटा सा कस्बा है। यहाँ के लोग अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाना व्यर्थ समझते हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि इस बेल्ट में गेहूँ की बन्पर पैदावार होती है और अमूमन यहाँ की आर्थिक गतिविधियाँ गेहूँ की बुवाई, कटाई, मंडी तक फसल को ले जाने और उसे कस्बे के ही या किसी बाहरी थोक खरीदार को बेचने के इर्द-गिर्द घूमती हैं। इन गतिविधियों के लिए ‘गणित का आधारभूत ज्ञान’ काफी है। तभाम बच्चों की तरह विकास जैन ने भी स्थानीय स्कूल में बारहवीं तक पढ़ाई की, ताकि वह अपने पिता का मंडी का कारोबार सम्भालने लायक बन सके। वैसे इस कस्बे के बड़े-बड़े लोग तो यहाँ तक सोचते हैं कि गेहूँ के कारोबार को सफलतापूर्वक चलाने के लिए दसवीं तक पढ़ना ही पर्याप्त है। लेकिन विकास का कुछ और सोचना था। वह बी.बी.ए. की पढ़ाई के लिए इंदौर गया। वह पुणे स्थित आई.आई.पी.एम. से एम.बी.ए. भी करना चाहता था।

एम.बी.ए. कोर्स के दौरान उसका मुंबई के अंधेरी इलाके में स्थित एक डायमंड ज्वेलरी निर्माता कंपनी में मार्केटिंग जॉब के लिए कैंपस सिलेक्शन हो गया। विकास सेल्स बढ़ाने के लिए डायमंड के सैंपल लेकर देश भर में घूमता रहता। उसका काम अच्छा चल रहा था। उसे व उसके परिवार को लगा कि वह इसी तरह बैग में गेहूँ के सैंपल लेकर क्यों नहीं घूम सकता। इसके बाद 22 साल की उम्र में विकास अपने शरबती व लोकवन गेहूँ ब्रांड को बेचने के लिए वर्ष 2009 में नौकरी छोड़कर वापस आषा आ गया।

उसके पिता सन् 1975 से जीतमल लक्ष्मीचंद के नाम से एक ट्रेडिंग फर्म चला रहे थे। विकास ने अपने पुश्टैनी कारोबार को आगे बढ़ाने के लिए रेलिश फूड व विजय ट्रेडर्स के नाम से दो नई फर्में शुरू कीं। उसके पिता कस्बे से जुटाया गया गेहूँ लूज मात्रा में आदिय बिड़ला समूह की रिटेल शाखा ‘मोर’ को देते थे, जिसकी कंपनी अपने नाम से ब्रांडिंग करती थी। विकास ने यह सब बंद कर दिया और ‘म.प्र. का सर्वोत्तम शरबती’ व ‘म.प्र. का सर्वोत्तम लोकवन’ के अपने ब्रांड नेम के साथ बेचना शुरू कर दिया, जिन्हें खासतौर पर मुंबई व पुणे के ‘मोर’ आउटलेट्स में बेचा जाता है। उसने अपने ब्रांड को रिटेल उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए इसकी 10 किलो व 25 किलो की पैकिंग भी तैयार कराई, जिन पर बार कोड व पैकेजिंग की तारीख भी प्रिंट होती थी। रिटेल मार्केट में 30

किलो से कम के पैक के लिए ऐसा करना जरुरी था। उसने बाद में अपने ब्रांड के साथ लोगों व स्लग लाइन तथा वेबसाइट को भी जोड़ दिया।

फिलहाल कारोबार के सिलसिले में यू.के. बेस्ड बुकर ग्रुप तथा यूरोपियन ग्रुप से विकास की बातचीत चल रही है। ये दोनों कंपनियाँ वॉल-मार्ट की तर्ज पर वैश्विक आपूर्ति के लिहाज से अनाज जुटाती हैं। उसने गेहूँ की विभिन्न किस्मों की लेखांकन प्रणाली को भी कंप्यूटरीकृत किया, जो पहले ‘बही खाता’ पर चलती थी। इससे उसे किसानों के ऐसे मामलों को निपटाने में मदद मिली, जिनमें इक्का-दुक्का बोरी गेहूँ का सौदा हुआ था। इसके बाद उसने भारतीय स्टेट बैंक के साथ बातचीत करते हुए अपनी कैश क्रेडिट लिमिट 1 करोड़ से बढ़ाकर 1.5 करोड़ रुपए तक करवा ली। बैलेंस शीट को विधिवत् मेंटेन किया गया। इससे उसे ब्याज की दर को भी 16 प्रतिशत से घटाकर 11.5 प्रतिशत तक लाने में मदद मिली। इन सब प्रयासों का ही नतीजा है कि उसकी कंपनी का सालाना टर्नओवर 70 करोड़ रुपए तक पहुँच गया है।

फंडा यह है कि कृषि जैसे असंगठित बाजार को संगठित रूप देने के लिए उच्च शिक्षा की महती दरकार है। किसानों के बच्चों का उच्च शिक्षा से दूर रहने का मतलब है कि वे अपने ही क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ना चाहते।

पैसे से ज्यादा करें ग्राहक की कद्र

वे बार-बार आपके चक्कर काटते हुए आपसे कहते हैं कि यदि आप उनके यहाँ बचत खाता खुलवाते हैं तो आपको लॉकर सुविधा भी मिलेगी। आप मान जाते हैं और इसके बाद आपके बुरे दिन शुरू हो जाते हैं। यह सब हो जाने के बाद बैंक आपसे कहता है कि साल में 12 से ज्यादा बार लॉकर ऑपरेट करने पर आपको हरेक अतिरिक्त ऑपरेशन के लिए 50 रुपए देने होंगे। सिंगापुर में तो ऐसे बैंक भी हैं, जो आपकी रकम को अपने यहाँ सुरक्षित रखने पर भी चार्ज करते हैं। सितंबर 2011 में बैंक ऑफ अमेरिका ने घोषणा की कि वह अपने ग्राहकों से 5 डॉलर मासिक डेबिट कार्ड फीस लेगा। इस पर ग्राहकों ने इतनी हायतौबा मचाई कि बैंक को वह योजना रद्द करनी पड़ी; लेकिन नुकसान हो चुका था। उस माह बैंक में खाता बंद करवानेवालों की दर वर्ष 2010 की इसी अवधि के मुकाबले 20 प्रतिशत तक बढ़ गई थी।

लंदन 2012 ओलिंपिक कमेटी के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह रही कि उन्हें महज 26 स्पोर्टिंग इवेंट्स के लिए न सिर्फ 80 लाख टिकट बेचने थे, वरन् उनकी कीमतों को भी इस हिसाब से रखना था, जिससे यह ओलिंपिक खेलों को ‘सर्वजन के खेल’ बनाने के अपने सामाजिक लक्ष्य को हासिल कर सके। इसलिए उन्होंने 16 दिनों के खेल के लिए टिकट दरें 20.12 यूरो से लेकर 2,012 यूरो तक रखीं। उन्होंने किसी के लिए भी मुफ्त टिकट जारी नहीं की और वे लोगों को कार व टैक्सी के बजाय लोक-परिवहन के साधन इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं, जो कि टिकट में ही शामिल है। सर्वाधिक लोकप्रिय खेलों को अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय खेलों के साथ जोड़ने (जैसा पहले के ओलिंपिक्स में होता रहा है) के बजाय 2012 ओलिंपिक कमेटी ने टिकटों के लिए 26 अलग-अलग मूल्य-निर्धारण योजनाएँ बनाई, जो सबके लिए मुफीद हों।

जब ‘द हिंदू’ अखबार ने अपनी कीमत 3.25 रुपए निर्धारित की तो चेन्नई की शिक्षित आबादी काफी परेशान हो गई। इसलिए नहीं कि पाठकों को कीमत पर कोई ऐतराज था, बल्कि वे इसलिए खफा थे, क्योंकि वेंडर कभी बाकी पैसे पूरे वापस नहीं करता था। ग्राहक अमूमन वेंडर को 5 रुपए देते, जिसमें से उन्हें वेंडर द्वारा 1.50 रुपए वापस मिलते, क्योंकि 25 पैसे पिछले पाँच सालों से चलन से तकरीबन बाहर हो चुके थे। ज्ञात हो कि चेन्नई के पाठक दूध की थेली के साथ अखबार भी खरीदना पसंद करते हैं। जाहिर तौर पर ‘द हिंदू’ अखबार के खरीदार हमेशा लालची वेंडर के हाथों 25 पैसे गँवा देते।

ग्राहकों के इन असंतुष्ट स्वरों को 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने भुनाया और अपने उत्पाद का 2 रुपए के तौर पर एक सुविधाजनक मूल्य निर्धारित कर दिया। इससे एक बड़ा पाठक वर्ग उसकी ओर खिसक गया। बाद में 'द हिंदू' ने भी अपनी कीमत घटाकर 2.50 रुपए कर दी। सुविधाजनक मूल्य-निर्धारण एक ऐसी स्थिति होती है, जिसमें लेन-देन से जुड़ी हर मद की विशाल आपूर्ति हो। इस तरह के सौदे में एक तरफ हमेशा नकदी और दूसरी ओर माल या वस्तुएँ होती हैं। यही कारण है कि भारत जैसे कीमतों के मामले में संवेदनशील बाजार में आपको कई उत्पाद 10 रुपए में बिकते नजर आते हैं।

फंडा यह है कि यदि आप अपने ग्राहक के साथ दीर्घकालीन कारोबार करना चाहते हैं तो दाम के बजाय उसके साथ रिश्ते को महत्ता दें। ग्राहक बेचे गए समस्त माल या उत्पादों की कीमत देंगे, लेकिन यदि आप उनके साथ अच्छे रिश्ते बरकरार रखते हैं तो वे आपको और भी ज्यादा भुगतान करेंगे।

गुणवत्ता-केंद्रित होगा

एम.एन.सी. संग व्यापार

जॉन (परिवर्तित नाम) दुनिया के सबसे बड़े रिटेलर को भारी मात्रा में अल्यूमीनियम फॉयल की सप्लाई करता था। जाहिर सी बात है कि यह सप्लाई कम कीमत पर होती थी, साथ ही इसकी क्वालिटी भी सस्ती किस्म की ही थी। नतीजा यह हुआ कि उक्त रिटेलर से नियमित खरीदारी करनेवाले ग्राहक धीरे-धीरे खिंचने लगे। ग्राहकों में बढ़ते असंतोष को समझ उस अमेरिकी रिटेलर ने सप्लायर से सारे संबंध तोड़ लिये। यही नहीं, स्टोर से सारे फॉयल हटाते हुए यह तक घोषणा कर दी कि असंतुष्ट ग्राहक फॉयल वापस कर रिफंड ले सकते हैं। इसी तर्ज पर मेक्सिको में रिश्वत प्रकरण सामने आने के बाद दुनिया के एक और बड़े रिटेलर वॉल मार्ट ने भारत की कंसल्टेंसी फर्म के.पी.एम.जी. भारत में उसके सैकड़ों वेंडर्स और सप्लायर्स को आँके कि कहीं वे उत्पादों की क्वालिटी के संदर्भ में किसी किस्म की अनैतिक या अवैधानिक गतिविधियों में तो लिप्त नहीं हैं।

चूँकि मेक्सिको की ही तर्ज पर भारत में सप्लाई या लाइसेंस के लिए रिश्वत लिये-दिए जाने की समावनाएँ मौजूद हैं, इसलिए वॉल मार्ट ने इस अनैतिक परंपरा को रोकने के लिए ही के.पी.एम.जी. से दखल देने को कहा है। भारत में वॉल मार्ट ने भारती एंटरप्राइजेज के संयुक्त उपक्रम से अपने स्टोर खोले हैं। वे नहीं चाहते हैं कि कम कीमत पर चीजें मुहैया कराने के कारण उन पर क्वालिटी से समझौता करने का कोई आरोप लगे। वॉल मार्ट ने लंबी लॉबीइंग के बाद सन् 2007 में मल्टी ब्रांड रिटेलर के तौर पर भारत में प्रवेश किया था। वह बजाय आम उपभोक्ता को सीधे उत्पाद मुहैया कराने के रिटेलर को कम कीमत पर उत्पाद उपलब्ध करा रहे हैं। ‘बेस्ट बाय’ के नाम से वह अब तक विभिन्न शहरों में 17 आउटलेट्स खोल चुके हैं। वॉल मार्ट क्वालिटी को लेकर बेहद सतर्क है। साथ ही अपनी व्यावसायिक गतिविधियों को भी पाक-साफ रखना चाहता है। यही वजह है कि उसकी रेटिंग फर्म वेंडर को ‘रेड’, ‘ग्रीन’ और ‘अंबर’ श्रेणी से निरूपित करती है। किसी वेंडर को रेड श्रेणी से निरूपित करती है। किसी वेंडर को रेड श्रेणी मिलने पर वॉल मार्ट उससे अपने सारे संबंध तोड़ने में देर नहीं लगाती।

भारतीय रिटेल उद्योग में क्वालिटी को लेकर काफी पेंच विद्यमान हैं। यही वजह है कि उच्च गुणवत्ता पर ध्यान देनेवाली वॉल मार्ट सरीखी दिग्गज कंपनियाँ निहित स्वार्थों से दूर रहती हैं। यही नहीं, वॉल मार्ट अपने उत्पादों की कीमत इस कारण भी कम रखने में कामयाब रहती है, क्योंकि उनकी पहुँच वैश्विक है। वे

अपने तमाम उत्पाद सीधे निर्माता कंपनी से खरीदती हैं। इस तरह बिचौलियों की भूमिका पूरी तरह से समाप्त हो जाती है। कह सकते हैं कि आनेवाले वर्षों में दो चीजें इस क्षेत्र को आकार देने का काम करेंगी। एक, अधिसंख्य कंपनियाँ अपने व्यवसाय में नैतिकता और ईमानदारी को तवज्ज्ञ देंगी। दूसरी तरफ सरकार भी आम उपभोक्ता के हितों की रक्षा के लिए कड़े नियम-कानून बनाने और उन्हें अमल में लाने से गुरेज नहीं करेंगी। इस कारण वे कंपनियाँ अपने आप ही परिदृश्य से हट जाएँगी, जो गुणवत्ता का ध्यान नहीं रख सकेंगी। गौरतलब है कि छोटे शहरों में ऐसे उद्यमियों की संख्या बढ़ रही है, जो सीधे खरीद करनेवाली बड़ी कंपनियों की माँग की आपूर्ति कर सकें। लेकिन इन बड़ी कंपनियों के साथ व्यापार करना इतना आसान नहीं होगा। इसकी प्रमुख वजह है कि ये कंपनियाँ गुणवत्ता से किसी भी स्थिति में समझौता करनेवाली नहीं हैं।

फंडा यह है कि यदि आप उभरती बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ लंबे समय तक व्यापार करना चाहते हैं तो सुनिश्चित करें कि आपके उत्पाद गुणवत्ता के पैमाने पर खरे उतरते हों। अन्यथा आपका व्यापार भूली-बिसरी यादें बनकर रह जाएगा।

हर उम्र से जुड़ा उत्पाद देता है ज्यादा मुनाफा

मचॉकलेट की बात चलते ही हमारे जेहन में बच्चों का ख्याल आता है। जाहिर तौर पर हम भारतीय इस उत्पाद को बचपन से जोड़ते हैं। हालाँकि बड़ी उम्र के लोगों का चॉकलेट खाना पाप नहीं है, लेकिन फिर भी हमारे समाज में ऐसे दृश्य आम नहीं हैं। लेकिन जरा ठहरें, टी.वी. पर आनेवाले एक हालिया विज्ञापन पर गौर करें। इसके शुरुआती दृश्य में मध्य आयु वर्ग की महिला पार्क में एक बेंच पर बैठी है। अचानक वह देखती है कि पास ही जमीन से रंग-बिरंगी चॉकलेट की गोलियाँ निकल रही हैं। वह चुपके से इधर-उधर देखती है और किसी को न पाकर घुटनों के बल झुकते हुए एक गोली उठाकर मुँह में डाल लेती है। उसके ऐसा करते ही उस जगह से तेजी से रंग-बिरंगी गोलियाँ निकलने लगती हैं। यह सोचकर कि कोई और उसके इस खजाने को चुरा सकता है, वह उन रंग-बिरंगी गोलियों पर पेट के बल लेट जाती है। लेकिन तभी वह जमीन से निकल रही गोलियों के तीव्र प्रवाह से हवा में उछल जाती है। इसके बाद विज्ञापन की टैगलाइन आती है—‘रहो उमरलैस’। कै डबरी जेस्स का यह हालिया विज्ञापन पिछले कुछ महीनों के दौरान आए उन विज्ञापनों में से एक है, जिनके जरिए इसके निर्माता यह साबित करने में लगे हैं कि बच्चों का उत्पाद समझा जानेवाला जेस्स अब सिर्फ उन्हीं का उत्पाद नहीं रहा और उसके लक्षित उपभोक्ता बड़ी उम्र के लोग भी हैं।

बच्चों के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि वे ज्यादा चॉकलेट खाने की इच्छा तो जाहिर कर सकते हैं, लेकिन जहाँ तक इस पर पैसे खर्च करने की बात है तो वे इसमें निर्णायक भूमिका में नहीं होते। कुछ समय पहले कैडबरी अपने एक्लेयर्स ब्रांड के लिए ‘गेट लॉस्ट’ के रूप में एक और विज्ञापन कैपेन लेकर आई। एक बार फिर उसके कमर्शियल में कोई बच्चा नहीं था। इसके अलावा कैडबरी फाइव स्टार बार के लिए ‘मास्टरजी, पिताजी की पतलून एक बिलांद छोटी कर दो’ वाला मशहूर एड भी आया, जिसमें रमेश और सुरेश नामक दो युवक चॉकलेट के स्वाद में इतना खो जाते हैं कि वे टेलर के काम पर निगाह रखना भी भूल जाते हैं, जो अपने मोबाइल पर बतियाते हुए पूरी लंबाई की एक पैट को न सिर्फ एक बार बल्कि तीन बार कतर देता है। इसी तरह बबालू नामक बबल गम ब्रांड भी अपने विज्ञापन ‘फेस का जिम’ के जरिए नहीं बच्चों के बजाय युवाओं को अपना लक्ष्य बना रहा है। इस विज्ञापन में दिखाया जाता है कि थुलथुल-से गालोंवाला एक नवयुवक लड़कियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए बबालू गम चबाता है।

ये विज्ञापनदाता अपने उत्पादों को उस आयु वर्ग के लोगों की ओर बढ़ा रहे हैं, जो स्वतः अपनी जेब ढीली कर सकते हैं। बाजार के विशेषज्ञों का कहना है कि मध्य आयु वर्ग के भारतीयों में भी चॉकलेट खाने की इच्छा होती है, लेकिन कुछ कारणों के चलते वे अपनी इस लालसा को दबा देते हैं। उनकी इसी लालसा को हवा देने और वे जिस समाज में रहते हैं, उसमें उन्हें चॉकलेट खाने की आजादी देने के लिए इन विज्ञापनों को बाजार में लगातार उतारा जा रहा है। यूरोमॉनिटर रिपोर्ट के मुताबिक चॉकलेट्स, गम व शुगर कन्फैक्शनरी पर भारत में प्रति व्यक्ति सालाना खर्च 83 रुपए है, जबकि ब्रिटेन में यही औंकड़ा 10,325 रुपए और अमेरिका में 5,270 रुपए सालाना है। लिहाजा विशेषज्ञों के मुताबिक कैटेगरी के हिसाब से चलनेवाले बाजार के खिलाड़ियों के लिए यह बहुत जरूरी हो जाता है कि वे नए ग्राहकों को जोड़ते हुए अपने बाजार को विस्तार दें।

फंडा यह है कि किसी खास उम्र के लोगों के बजाय सभी उम्र के लोगों के लिए उत्पाद रखना हमेशा बेहतर होता है। यदि आपने एक खास वर्ग से जुड़ा उत्पाद तैयार किया है तो आपको नए वर्गों को साथ जोड़ने के लिए अतिरिक्त राशि खर्च करनी पड़ेगी।

क्या आपको है ग्राहकों की दिवकरतों का भान?

जब आप साड़ियों की किसी दुकान में जाते हैं तो वहाँ आपको अमूमन किस तरह का नजारा दिखाई देता है? यदि आप ध्यान से देखें तो वहाँ ऐसी कई महिलाएँ मिलेंगी, जिन्हें यह समझ नहीं आता कि अपने सेलफोन या लिपस्टिक को किस तरह संभालकर रखें। दुकान से निकलने के बाद ऐसी महिला ग्राहकों की ओर से अमूमन ऐसी अनेक कॉल्स आती हैं कि वे अपना मोबाइल वहाँ भूल गई हैं और दुकानदार उसे उनके आने तक अपने यहाँ हिफाजत से रख लें तो मेहरबानी होगी। चेन्ऱर्ड का एक अपमार्केट उपनगरीय इलाका है टी-नगर, जहाँ पर कुमारन स्टोर्स नामक एक मशहूर साड़ी सेंटर स्थित है। यह साड़ी सेंटर अमूमन हर दो मिनट में एक साड़ी बेचता है और उसके यहाँ रोज 5,000 से ज्यादा ग्राहक आते हैं। इस स्टोर्स के मालिक को लगा कि ये मोबाइल उनके लिए सिरदर्द बनते जा रहे हैं।

मले ही आज बड़ी संख्या में युवा लड़कियाँ जींस व स्कर्ट अपना रही हों, लेकिन चेन्ऱर्ड जैसे शहर में साड़ी अब भी महिलाओं का प्रमुख परिधान है। देश के किसी भी अन्य शहर के मुकाबले चेन्ऱर्ड में कॉलेज के दीक्षांत समारोह, सहेली की शादी जैसे आयोजनों में साड़ी खूब पहनी जाती हैं। ऐसे में कुमारन स्टोर्स ने ऐसी साड़ी बाजार में पेश की, जिसमें पॉकेट भी है। साड़ी में यह पॉकेट ऐसी जगह पर बनाई जाती है, जो पहनने पर बाईं ओर कमर के थोड़ा नीचे आती है। इसमें मोबाइल, छोटा सा रुमाल और लिपस्टिक रखी जा सकती है। ये पॉकेट साड़ियाँ (जिनकी रेंज 4,000 रुपए से शुरू होती है) वहाँ रातोरात हिट हो गईं। ये मुख्यतः आधुनिक कामकाजी महिलाओं या युवा लड़कियों को ध्यान में रखकर बनाई जा रही हैं, जो पारंपरिक कांजीवरम सिल्क के साथ भी कुछ ट्रेंडी चाहती हैं। साड़ियाँ और मोबाइल चेन्ऱर्ड में हर आयु वर्ग की महिलाओं की खास पसंद हैं। कॉलेज जानेवाली लड़कियों के बीच ये साड़ियाँ खूब लोकप्रिय हैं, जो पार्टीयों या फंक्शनों में पहनने के लिए इन्हें खरीदती हैं।

मुझे याद है कि पहले कुमारन स्टोर्स ने चार अलग-अलग पल्लुओं की साड़ियाँ पेश की थीं, जिसे 'जिप मैच साड़ी' नाम दिया गया था। इस किस्म की साड़ी में महिलाएँ अवसर और मूड के हिसाब से साड़ी का पल्लू बदल सकती थीं। लेकिन पॉकेट साड़ी के मौजूदा क्रेज के आगे अब तक बाकी तमाम खोजें पीछे छूट गई हैं, क्योंकि मोबाइल अब इस शहर में साड़ी पहननेवाली हर महिला का हिस्सा बन गया है।

साड़ी बाजार ने उच्च क्रय शक्तिवाले ग्राहकों के मद्देनजर कई तरह के नए-नए प्रयोग किए हैं। गरमी का उमस भरा मौसम महिलाओं को सिल्क की साड़ी पहनने से रोकता है, लिहाजा साड़ी निर्माता सिल्क कॉटन साड़ी लेकर आए, जिनकी चमक और जरीदार बॉर्डर इनके सिल्क होने का आभास देता; लेकिन ये कॉटन की बनी होतीं, जो पहनने में ज्यादा आरामदायक होती हैं। इसके बाद वे साड़ी सेग्मेंट में हाफ साड़ी डिजाइन लेकर आए, खासकर ऐसी लड़कियों के लिए, जो युवावस्था की ओर कदम बढ़ा रही थीं और जिन्हें एक खास उप्र से पहले साड़ी पहनने की इजाजत नहीं होती, लेकिन वे इसे टू-पीस में पहन सकती हैं, जिन्हें तमिल में पल्लू व बॉटम कहते हैं। पहनने पर इस हाफ साड़ी के निचले हिस्से की अलग डिजाइन होती है और ऊपरी हिस्से की अलग; लेकिन इन्हें एक ही कपड़े के पीस से तैयार किया जाता है।

फंडा यह है कि ग्राहकों की दिक्कतों को समझना और अनकही शिकायतों को सुनना ही मार्केटिंग की कला है। एक सफल मार्केटर या व्यवसायी वही है, जो अतीत पर निगाह जमाने के साथ-साथ भविष्य की जरूरतों को समझते हुए उस दिशा में अपने कदम बढ़ाए।

उत्पाद संग खुशी भी पैकेज में शामिल हो

दस वर्षीय एक बालक कॉलोनी के टेनिस कोर्ट में खेलते वक्त फिसलकर गिर जाता है, जिससे उसकी कुहनी व घुटने छिल गए और शर्ट-पैंट भी गंदे हो जाते हैं। वह रोते हुए अपने घर पहुँचता है। अब उसकी माँ पर दो कामों की जिम्मेदारी आ जाती है। एक तो धूल-मिट्टी से सनी उसके शर्ट-पैंट को अच्छी तरह धोना है, जो मुश्किल लगता है; लेकिन पिछले कुछ समय से कपड़ों की धुलाई के संदर्भ में चल रही है एक एड-लाइन ‘दाग अच्छे हैं’ इस प्रक्रिया में उसे शांत रखती है और वह इस बात पर ज्यादा ध्यान देती है कि बच्चे को चुप कैसे कराया जाए। वह बच्चे के हाथ-पैर धुलवाती है और जखों पर डिटॉल जैसी एंटी-बैक्टीरियल लोशन लगाने के बाद जॉनसन एंड जॉनसन कंपनी का चिपकनेवाला बैंडेज ‘बैंडएड’ लगाती है। इसके बाद वह बच्चे से कहती है कि यह बैंडेज जल्द ही उसका धाव भर देगा, क्योंकि इस बैंडेज-कैंपेन से जुड़ा कर्मिट नामक मेढक का किरदार उसके पास आएगा और उसे पूरी तरह ठीक कर देगा।

बच्चा माँ से पूछता है कि क्या वास्तव में मेढक उसके पास आएगा? माँ हामी भरते हुए अपना आईफोन उठाती है और बैंड-एड मैजिक विजन एप्प को डाउनलोड करती है। इसके बाद वह इसको बैंड-एड कवर की ओर धुमाती है, जिस पर एक क्यूआर कोड दर्ज होता है। यह एप्प कवर पर छपे पिक्सल-युक्त कोड को पढ़ता है और इसके बाद बच्चा देखता है कि स्क्रीन पर बैंडेज से एक ‘मपेट’ किरदार उभर रहा है।

अब माँ बच्चे को फोन के साथ अकेला छोड़कर अपने रोजमर्रा के काम निपटाने चली जाती है। झूले पर बैठा कर्मिट मेढक बच्चे से पूछता है, ‘उदास हो?’ जब बच्चा ‘हाँ’ कहता है या स्वीकृति में सिर हिलाता है तो वह मेढक उससे कहता है, ‘तुम्हारी यह उदासी जल्द दूर हो जाएगी, क्योंकि अब हम एक गाना गाने जा रहे हैं।’ इसके बाद मेढक ‘रेनबो कनेक्शन’ गुनगुनाता है, जिसके साथ वैसा ही परिदृश्य स्क्रीन पर बन जाता है। जब बच्चा फोन को इधर-उधर झुकाता है तो मेढक भी उसी दिशा में झूल जाता है और बच्चा स्क्रीन पर प्रदर्शित नजारे की तसवीर ले सकता है।

इस एप्प को मोबाइल टेक्नोलॉजी कंपनी क्वालकॉम और जे.डब्ल्यू.टी. न्यूयॉर्क ने मिलकर तैयार किया है। मार्केट्स अमूमन ग्राहकों के साथ भावनात्मक कनेक्शन स्थापित करने की जुगत में लगे रहे हैं और बैंड-एड को लगता है कि माताएँ इस तरह के मुश्किल वक्त में बच्चों को खुश करने की ऐसी कोशिश

को पसंद कर सकती हैं और वह अपने इस अभियान के जरिए माँओं के साथ भावनात्मक तार जोड़ सकता है।

जब कोई बच्चा चोटिल होकर घर में आता है तो निश्चित तौर पर यह माँ व बच्चे दोनों के लिए एक भावुक पल होने के साथ-साथ दुःख का भी क्षण होता है। वास्तव में इस नए एप्प ने माता-पिता, बच्चों और बैंड-एड के बीच एक बांडिंग बना दी है। यह इस बात की सजीव प्रस्तुति है कि विज्ञापनदाता विज्ञापनों में क्या करने की कोशिश करते हैं।

गौरतलब है कि क्यूआर कोड को अपने एप्प में डालने का विचार जॉनसन एंड जॉनसन की टॉप मैनेजमेंट टीम के दिमाग में तब आया, जब ग्राहक उनके बैंड-एड ब्रांड से छिटककर दूसरे सस्ते ब्रांड की ओर जा रहे थे और बाजार में उसकी हिस्सेदारी घट रही थी।

फंडा यह है कि खुशी हरेक उपभोक्ता का परम लक्ष्य होती है। हर व्यक्ति इसलिए यहाँ रहता, काम करता और पैसा कमाता है, ताकि वह अपने या अपने परिजनों के लिए खुशियाँ हासिल कर सके। इसे समझते हुए मार्केटर्स अपने उत्पाद की पैकेजिंग करते वक्त इसके साथ खुशी जैसे कारक को जोड़ना न भूलें।

कर्मियों की पैकेजिंग व डस्टिंग है जरूरी

किसी भी मैन्युफैक्चरिंग सिस्टम में ‘मानवीय संपदा’ ही इकलौती ऐसी संपदा है, जिसका भाव समय के साथ-साथ बढ़ सकता है। मशीन, औजार, इमारत व फर्नीचर समेत बाकी तमाम संपदाओं का मूल्य समय के साथ घटता जाता है। लेकिन मानवीय संपदा को और ज्यादा मूल्यवान् बनाने के लिए बुनियादी तौर पर जिस चीज की जरूरत होती है, वह है कर्मचारी की पैकेजिंग व डस्टिंग! पढ़कर थोड़ा अजीब लगता है? खैर, आगे पढ़ें। पैकेजिंग से आशय बाहरी आवरण से है, यानी जिस तरह से आप खुद को दुनिया के सामने पेश करते हैं। यह आपकी उपस्थिति को बेहतर बनाती है। ‘हार्वर्ड बिजनेस रिव्यू’ (एच.बी.आर.) का एक रिसर्च कहता है कि लोग आपकी बाहरी छवि के आधार पर पहले 15 सेकंड में ही आपके बारे में एक धारणा बना लेते हैं, चाहे यह इंटरव्यू की बात हो, पार्टी की या किसी मीटिंग की। यह शुरूआती इंप्रेशन चिपकू होता है और किसी गलत पैकेजिंग की वजह से उपजे शुरूआती नकारात्मक इंप्रेशन को मिटाने के लिए सकारात्मक जानकारी के आठ हिस्से लग जाते हैं। इसी वजह से इस बात पर ध्यान देना बहुत जरूरी हो जाता है कि आप खुद को कैसे पेश करते हैं। बैग, पेन, जूते, जुराबें, रुमाल, बिजनेस कार्ड केस जैसी एसेसरीज समेत आपकी बेहतर प्रूमिंग व्यक्तिगत तौर पर भले आपको जरूरी न लगे, लेकिन उनका उस ब्रांड में जरूर योगदान होता है, जो आप हैं।

डस्टिंग से आशय है कि आप मार्केटप्लेस में कैसे अपने सारभूत तत्व को दूसरों तक पहुँचाते हैं। यह आपके निकटवर्ती बॉस से शुरू होकर उन लोगों तक हो सकता है, जो पदानुक्रम में आपकी पहचान के लिहाज से मायने रखते हैं। समय-समय पर नॉलेज की डस्टिंग से आत्मविश्वास बढ़ता है। यदि आप चाहते हैं कि आपके आस-पास के लोग आपके द्वारा पेश विचारों और नीतियों को सकारात्मक तरीके से काम में लाएँ तो यह इस पर निर्भर है कि आप खुद अपने ब्रांड को किस तरह मैनेज करते हैं।

जापान व जर्मनी जैसे देशों में कर्मचारी की निरंतरता का एक दीर्घकालीन विन्यास होता है। वहाँ रोजगार में लचीलापन कर्मचारी की योग्यता मानी जाती है, जिसे नियोक्ता द्वारा समर्थन दिया जाता है। नियोक्ता चाहते हैं कि उनके कर्मचारी नई-नई चीजें सीखें। यही कारण है कि विकसित देशों के मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर में कर्मचारियों की संतुष्टि का स्तर ज्यादा है, भारत जैसे उमरते सेक्टर की तुलना में, जहाँ पर लाभदायकता के हिसाब से कर्मचारी का विकल्प पाना अच्छा समझा जाता है। लेकिन ‘हार्वर्ड बिजनेस रिव्यू’

का हालिया शोध कहता है कि ऐसा करने से अमूमन एक समय के बाद लाभदायकता व उत्पादकता कम हो जाती है।

विभिन्न सर्वे व अध्ययन साबित करते हैं कि कर्मचारी का व्यक्तित्व खास होना चाहिए, जिसे दूसरे भी अपनाने की कोशिश करें। वह दूसरों के सामने जो भी नॉलेज पेश करे, वह कंपनी के लिहाज से अच्छा उत्पाद हो। उसकी वेशभूषा बेहतर हो, यानी पैकेजिंग अच्छी हो। वह चीजों को अच्छे से प्रमोट कर सके, यानी संप्रेषण क्षमता बेहतर हो। आखिर में, अन्य देशों व लोगों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने के लिए हमारे पास तीव्रतर लर्निंग सिस्टम होना चाहिए, जिसमें कर्मचारी व नियोक्ता दोनों की सहभागिता हो।

फंडा यह है कि हरेक कर्मचारी या संभावित कर्मचारी को सफल होने के लिए अनेक स्तर पर पारंगत होना चाहिए। उन्हें हर साल नई-नई खूबियों से अपनी पैकेजिंग करते रहनी चाहिए। वहीं नियोक्ताओं को भी चाहिए कि वे इन कर्मियों की अवांछित क्षमताओं को झाड़ते रहें, ताकि दोनों एक-दूसरे के लिए उपयोगी बने रहें।

बार-बार मेसेज करने से छिटकते हैं ग्राहक

कोलंबिया बिजनेस स्कूल की एक प्राध्यापिका शीना आयंगर ने विकल्पों के संदर्भ में हाल में एक प्रयोग किया। उन्होंने एक सुपरमार्केट की टेबलों पर जैम की बोतलों को 6, 12 और 24 के समूह में रखा। इन तमाम बोतलों में अलग-अलग स्वादवाले विभिन्न तरह के जैम थे। जो लोग जैम की 6 बोतलों के समूह के संपर्क में आए, उनमें से 30 प्रतिशत लोगों ने जैम खरीदा, 12 जैम की बोतलें देखनेवाले 10 प्रतिशत लोगों ने ऐसा किया, जबकि जिन लोगों के समक्ष 24 तरह के जैम का विकल्प पेश किया गया, उनमें से सिर्फ 3 प्रतिशत ने उसे खरीदा।

ऐसा इसलिए, क्योंकि लोग बहुत सारे विकल्प देखकर उलझन में पड़ गए। ‘हॉर्वर्ड बिजनेस रिव्यू’ ने अपने सर्वे में कहा है कि अनेक ग्राहकों के लिए मार्केटिंग संबंधी संदेशों की बढ़ती मात्रा परेशानीजनक होती है। मोबाइल संदेशों की बाढ़ ग्राहकों को खरीदारी के लिए खींचने के बजाय उन्हें उत्पादों से दूर धकेल रही है। मनोविज्ञानी बैरी स्वार्ट्ज अपनी पुस्तक ‘द पैराडॉक्स ऑफ चॉइस’ में कहते हैं कि इनपुट के आधिक्य से ग्राहक के भीतर गुस्सा, अनिर्णय, खेद जैसे भाव उत्पन्न होते हैं, जो अंततः उसे खरीद की प्रक्रिया और उत्पाद दोनों से दूर ले जाते हैं।

किसी मॉल के इलेक्ट्रॉनिक आइटमवाले फ्लोर पर पहुँचने पर आप वहाँ ग्राहकों को एक ही वैरायटी के उत्पादों की अलग-अलग रेंज पर समय खपाते हुए देख सकते हैं। लेकिन ये लोग कदाचित् ही वहाँ से उत्पाद खरीदते हैं। ग्राहक अपना ज्यादातर समय व ऊर्जा इन उत्पादों की विविध रेंज को समझने और उनके बारे में लिखने में लगाते हैं और वह फिर किसी और दुकान पर जाते हैं तथा उस खास उत्पाद की माँग करते हैं, जिसे उन्होंने मॉल में सूचीबद्ध किया था। यदि वे उसे वहाँ से खरीद भी लेते हैं, तब भी वे इसे लेकर लंबे समय तक चिंतित बने रहते हैं कि इतने सारे विकल्पों के बीच उन्होंने समझदारीपूर्ण खरीदारी की है या नहीं। ग्राहक को अपनी खरीदारी पर संतुष्टि तभी मिलती है, जब उसका कोई करीबी मित्र, रिश्तेदार या परिचित उसके निवास पर आने के बाद उस खरीदारी को समझदारीपूर्ण बताते हुए अपनी मुहर लगा देता है।

वॉल्ट डिज्नी में एक पैनल है, जिसे वॉल्ट डिज्नी वर्ल्ड मम्स पैनल कहते हैं। यह उन ग्राहकों को जरूरी जानकारी मुहैया कराता है, जो डिज्नी वेकेशन की प्लानिंग कर रहे होते हैं। उन मम्स के पास कम-से-कम 25 वर्ल्ड ट्रिप्स हैं और वे डिज्नी से जुड़ी छुट्टियों के बारे में विश्वसनीय जानकारी दे सकते हैं। एक

कॉर्पोरेट एक्जीक्यूटिव बोर्ड ने तीन महीने की अवधि में अमेरिका, ब्रिटेन तथा ऑस्ट्रेलिया में विभिन्न आयु वर्ग एवं आय वर्ग के 700 से ज्यादा लोगों को खरीदारी के पूर्व और खरीदारी के बाद का सर्वे किया। इन लोगों से शॉपिंग की अवधि, खरीदारी के लिए जरूरी प्रयास, खरीदारी संबंधी रिसर्च, ग्राहक की मनोस्थिति, ब्रांड के साथ उनका रिश्ता और ब्रांड के साथ अंतर्संवाद की बारंबारता इत्यादि के बारे में सवाल किए गए। जहाँ तक उच्च बारंबारता की बात है तो इस मामले में कम-से-कम 90 प्रतिशत ग्राहकों का रुख नकारात्मक मिला।

फंडा यह है कि जरूरत से ज्यादा सूचना देना ग्राहक की सोच को पंगु बना देता है। मार्केटरों को चाहिए कि वे ग्राहक के लिए निर्णय करना आसान बनाएँ और उनके लिए जानकारी के स्रोत को कम-से-कम रखते हुए उनकी खरीदारी का सफर सहज बनाने की कोशिश करें, ताकि वे ज्यादा आत्मविश्वास से खरीदारी कर सकें। वे ग्राहकों को ऐसे संसाधन मुहैया कराएँ, जिससे वे खुद अपना विकल्प चुन सकें। उन्हें किसी एक उत्पाद की ओर धकेलना ठीक नहीं है।

कुछ ग्राहक कभी नहीं बताते अपनी पसंद

आखिर महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र में अल्फांसो आम के एक उत्पादक, नागपुर में संतरे की खेती करनेवाले तथा हिमाचल प्रदेश के सेब उगानेवाले या पूर्वी भारत के किसी हिस्से में आलू उगानेवाले के बीच क्या समानता है? यदि आप सोचते हैं कि वे सभी अपनी जमीन पर कुछ फसल उगाते हैं और आगे चलकर उसे नकदी में तब्दील कर लेते हैं, तो गलत नहीं हैं। लेकिन आप सिर्फ वही देख रहे हैं, जो ऊपरी तौर पर दिखाई पड़ रहा है। उन सबके भीतर कुछ छिपा है, जिसके बारे में वे बात नहीं करते। वे चाहते हैं, कोई तो उनके यहाँ आए और इस बारे में उनसे चर्चा करे। उनकी एक व्यापक आकांक्षा है। एक अच्छा सा घर, परिवार और बेहतर आजीविका (वह भी हरे-भरे माहौल में) के लिहाज से पर्याप्त धन होने के बाद ऐसी कौन सी अभिलाषा हो सकती है, जिसके लिए वे अपने खून-पसीने की कमाई को खर्च करने के लिए तैयार हो सकते हैं? उनकी अभिलाषा अपनी कार की है। वे उसी तरह कार ड्राइव करना चाहते हैं, जिस तरह ह्यूंडै आई-10 के विज्ञापन में शाहरुख खान अपनी गर्लफ्रेंड के साथ तेजी से कार दौड़ाते हुए नजर आते हैं।

लेकिन एक कंपनी है, जो उनके मन में दबी इस आकांक्षा को गंभीरता से ले रही है। इस कंपनी ने टाटा ट्रक का रूप बदलकर उसे एक छोटे से मोबाइल थिएटर में तब्दील कर दिया है। वे उस थिएटर को जगह-जगह ले जाकर उस पर मारुति सुजुकी के बारे में 13 मिनट की एक लघु फिल्म दिखा रहे हैं। उस ट्रक में स्पिलिट ए.सी. है, आरामदेह कुरसियाँ हैं और सैमसंग की विशाल एल.सी.डी. स्क्रीन लगी है। फिल्म के बाद एक मिमिक्री आर्टिस्ट लोगों के सामने आता है और बॉलीवुड के मशहूर सितारों पर कुछ चुटकुले सुनाने के बाद लोगों से उस फिल्म के बारे में सवाल पूछता है। सही जवाब देनेवाले व्यक्ति को एक कैप, पेंसिल या अन्य कोई छोटा-मोटा उपहार मिलता है, जिस पर मारुति का लोगो बना होता है।

फिल्म के किरदारों को स्थानीय नाम दिए जाते हैं और इसे अलग-अलग भाषा में डब किया जाता है। फिल्म में एक ग्रामीण की सीधी-सादी कहानी होती है, जो अपने मित्र की वैगन-आर से जुड़ी सुविधाओं को देखकर खुद भी अपने लिए एक कार खरीद लेता है। पहले मार्केट ग्रामीण बाजारों के दोहन के बारे में ज्यादा नहीं सोचते थे, लेकिन आज ऑटो इंडस्ट्री से जुड़े लोग राष्ट्रीय राजमार्गों को पार करते हुए देश के अंदरुनी इलाकों की तवज्जो पाने में लगे हैं। आज उनका इसी

पर जोर है और उनके 65 प्रतिशत ग्राहक ग्रामीण बाजार से हैं, जिनकी व्यापक आकांक्षाएँ हैं।

विभिन्न चाहत रखनेवाले ये ग्रामीण महानगरों में श्री-पीस सूट में सजे-धजे किसी सेल्समैन के साथ बातचीत करने में हिचकते हैं और यही कारण है कि जब उन जैसा कोई शख्स, जो उनकी ही भाषा बोलता हो, वहाँ आता है और उनके द्वारा चाही गई वस्तुओं को वहाँ बेचता है तो वे तुरंत उसकी खरीदारी के लिए तैयार हो जाते हैं। उनकी आकांक्षाएँ व कामनाएँ शहरी लोगों से अलग नहीं हैं। उनकी आकांक्षाओं को हवा देने के लिए कंपनियाँ विभिन्न गाँवों के सैकड़ों सरपंचों को अपनी फैक्टरियों में ले जा रही हैं और अपना प्रोडक्शन व असेंबली यूनिट्स उन्हें दिखा रही हैं। वे यही फिल्म स्थानीय गाँववालों को दिखाते हैं। इस तरह की गतिविधियों से उनकी आकांक्षाएँ चरम पर पहुँच जाती हैं, जिससे आखिरकार कंपनियों को अपनी बिक्री में मदद मिलती है।

फंडा यह है कि ग्रामीण व शहरी लोगों की आकांक्षाएँ एक जैसी होती हैं। जहाँ ग्रामीण जन इनके बारे में बात नहीं करते, वहीं शहरी लोग अपनी चाहतों का जमकर बखान करते हैं। अब यह हम पर है कि कैसे इस व्यापक बाजार का दोहन करें।

कर्मचारी के उत्साह को खत्म न करें

“रवि, काम करने का यह तरीका सही नहीं है।” उसके बॉस ने सबके सामने उस पर चिल्लाते हुए कहा। रवि ने अपने कंधे ढीले किए और वहाँ से निकल गया। इसके पहले भी जब बॉस उससे सहमत नहीं थे और उसने उनसे तर्क किया तो वे उसे अपने केबिन में ले गए और घंटों जमकर फटकारा। यही नहीं, बाद में उसे उस दिन काम पूरा न करने के लिए दंडित भी किया। रवि कभी नहीं समझ पाया कि उसके बॉस उसके काम करने के तरीके से क्यों खुश नहीं हैं, जबकि इसके जरिए प्राप्त नतीजे पुरानी परिपाटी से हासिल नतीजों से कहीं बेहतर रहे। रवि ने प्रक्रिया में बदलाव लाने के लिहाज से बॉस को समझाने की काफी कोशिश की, लेकिन उसे चुप करा दिया जाता।

आखिरकार एक दिन रवि बेहतर संभावनाओं की खातिर संस्थान छोड़कर चला गया। एक्जिट इंटरव्यू में उसने कहा कि वह यह संस्थान अपने बॉस की वजह से छोड़ रहा है, अपने मैनेजर की वजह से नहीं।

हाल में मुझे ‘न्यूयॉर्क टाइम्स’ की बेस्ट सेलिंग सूची में शामिल ‘फर्स्ट, ब्रेक द रूल्स’ के लेखक कर्ट कॉफमैन से साक्षात्कार का मौका मिला। जब मैंने उन्हें रवि की कहानी सुनाई तो उन्होंने कहा कि बॉस द्वारा ऐसा करने से ही कर्मचारी का उत्साह खत्म हो जाता है। कॉफमैन ने कहा कि निम्न पाँच नियमों पर चलनेवाले लीडर्स ही अपने संस्थान का बेड़ा गर्क करते हैं—

1. कर्मचारी का आकलन इस आधार पर करना कि वह कैसे काम करने के विभिन्न चरणों को अपनाता है, भले ही नतीजा कुछ भी हो।
2. उसे खासतौर पर यह बताना कि वह क्या नहीं है और कमियों से उबरने में मदद न करना।
3. हमेशा उसे यह अहसास कराना कि काम गंभीर है और कड़ी मेहनत ही एकमात्र समाधान है।
4. तमाम कर्मचारियों को भय दिखाकर काम के लिए विवश करना।
5. हमेशा यह हाईलाइट करना कि वे क्या नहीं चाहते।

कर्मचारियों में काम के प्रति उत्साह पैदा करने के लिए बॉस निम्न पाँच उपाय अपना सकते हैं—

1. कर्मचारियों को लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाने के लिए 'उम्मीद' का इस्तेमाल करना।
2. काम को मजेदार और ऊर्जा से भरपूर बनाया जाए।
3. यह समझने में कर्मचारियों की मदद करें कि वे नतीजे पाने के लिए जिस प्रक्रिया को अपना रहे हैं, उससे कैसा फल मिलेगा और उन्हें वास्तव में किसलिए नौकरी पर रखा गया है।
4. हरेक कर्मचारी की यह जानने में मदद करें कि वह क्या है और कंपनी के लक्ष्यों के लिए किस तरह अपना सर्वश्रेष्ठ दे सकते हैं।
5. वह निश्चित तौर पर क्या चाहता है, इस बारे में एक विजन तैयार हो।

कॉफमैन के मुताबिक, हरेक संस्थान में संस्कृति के तीन स्तर होते हैं—कर्मचारी के साथ सूक्ष्म संस्कृति, मैनेजर के साथ सेतु संस्कृति और प्रमोटर्स के साथ वृहद् संस्कृति। इन तीनों संस्कृतियों की अपनी खास भूमिका होती है, जैसे कि सूक्ष्म संस्कृति का काम साथी कर्मचारियों में उद्देश्यपरक और सकारात्मक ऊर्जा पैदा करना है, वहीं सेतु संस्कृति का काम इन सकारात्मक लोगों को संस्थान के उद्देश्यों के साथ जोड़ना तथा वृहद् संस्कृति का काम वह दिखाना है, जो नहीं देखा गया। इसे स्टीव जॉब्स की मिसाल के जरिए अच्छी तरह समझा जा सकता है, जिन्होंने ऐसे बाजारों को उभारा, जो अस्तित्व में ही नहीं थे।

फंडा यह है कि अच्छे कर्मचारियों को अपने साथ जोड़े रखने तथा उन्हें संस्थान के भीतर सकारात्मक ऊर्जा पैदा करने के लिए मैनेजरों को उनमें उत्साह पैदा करना चाहिए, न कि इसे खत्म किया जाए। वास्तव में मध्य स्तर के मैनेजरों के कंधों पर बड़ी जिम्मेदारी होती है।

किराना को खतरा नहीं मल्टी ब्रांड से

केंद्र सरकार के मल्टी ब्रांड रिटेल में 51 प्रतिशत के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) के फैसले को दो तरह से देखा जा रहा है। उद्यमियों को लग रहा है कि इस फैसले से लगभग 16 अरब रुपए का विदेशी निवेश खुदरा क्षेत्र में होगा, जिससे न सिर्फ रोजगार के अवसर बढ़ेंगे बल्कि अर्थव्यवस्था को भी गति मिलेगी। दूसरी तरफ वे लोग हैं, जो इसे किराना दुकानों के लिए खतरा बता रहे हैं। उनका तर्क है कि मल्टी ब्रांड रिटेल के आने से लोग किराना दुकानों से सामान खरीदना बंद कर देंगे, जिसका असर इससे जुड़े लोगों की रोजी-रोटी पर पड़ेगा। सबसे पहले आते हैं मल्टी ब्रांड रिटेल से किराना दुकानों पर खतरे की बात करनेवालों पर। सच तो यह है कि मल्टी ब्रांड रिटेल से किराना दुकानदारों को 1 प्रतिशत भी नुकसान नहीं होने वाला है। इसकी बड़ी वजह यह है कि एक किराना दुकान चलाने के लिए 500 से 700 वर्ग फीट की जगह चाहिए होती है। इसके उलट ‘बेस्ट बाय’ जैसे सुपर स्टोर को कम-से-कम दस किराना दुकानों जितनी जगह चाहिए होती है।

आप ही बताएँ, किराना दुकानवाले क्षेत्र में इतनी जगह है कहाँ? द्वितीय और तृतीय श्रेणी के शहरों में इतनी जगह ही नहीं है। दूसरे, किराना दुकानें सालों से चल रही हैं। इसलिए नहीं कि वे स्थानीय ग्राहकों को सस्ता सामान देती हैं, बल्कि इसलिए कि ग्राहकों को सामान लेने के लिए कहाँ दूर नहीं जाना पड़ता। हालाँकि कीमतों में भारी अंतर ग्राहकों को माह में एक बार जरूर मल्टी ब्रांड रिटेल से जुड़े सुपर मार्केट तक लेकर जा सकता है, लेकिन दैनिक जरूरत की चीजें वे किराना दुकानों से ही खरीदेंगे।

अगर कोई चाहता है कि ग्राहक महीने में एक बार भी सुपर मार्केट की ओर रुख न करें तो उन्हें चेनर्ई के उपनगर पेरिस कॉर्नर में नाथन स्टोर का अनुकरण करना होगा। पिछले तीस सालों से चल रहा नाथन स्टोर किसी आम किराना दुकान की तरह है। आप किसी भी चेनर्ईवासी से बात करें, वह सस्ती कीमतों के कारण नाथन स्टोर को तरजीह देता नजर आएगा। लोग वहाँ सामान खरीदने के लिए आधा-आधा घंटा लाइन में खड़े रहते हैं। यह स्टोर 1,000 वर्ग फीट से बड़ा नहीं है।

नाथन स्टोर जो कर रहा है, उसे देश के अन्य किराना दुकानदार भी कर सकते हैं। इस स्टोर का मालिक अपना अधिकांश समय शहर से बाहर बिताता है। इस अवधि में वह कंपनियों से विभिन्न उत्पादों की सीधे खरीदारी करता है। इस तरह से जो फायदा उसे मिलता है, वह उसमें से एक हिस्सा ग्राहकों को सस्ती

कीमत लगाकर देता है। स्टोर में उपलब्ध एक भी सामान प्रिंटेड कीमतों पर नहीं बिकता, बल्कि 50 पैसे से लेकर 5 रुपए तक सस्ता ही बिकता है। कुछ उत्पाद तो 18 रुपए तक सस्ते मिलते हैं। पेरिस कॉर्नर चेन्डर्ड का व्यावसायिक इलाका है, जहाँ तमाम प्रमुख ऑफिस स्थित हैं। जैसा बताया कि लोग घंटों लाइन में लगकर यहाँ सामान खरीदने आते हैं। इसे देखते हुए स्टोर मालिक ने उपनगर मंबलम में भी एक शाखा खोली है। जाहिर है कि वहाँ भी लोगों की खासी भीड़ उमड़ती है। ग्राहकों को कम कीमत पर सामान मिलता है और मालिक का किसी उत्पाद की बड़ी संख्या में बिक्री से आर्थिक लाभ का दायरा बढ़ जाता है।

फंडा यह है कि अगर आप किराना व्यापार के तौर-तरीके में मामूली फेर-बदल करते हुए उसे ग्राहकों की नजर से देखते हैं तो कोई भी सुपर या हाइपर मार्केट पुरानी किराना दुकानों का स्थान नहीं ले सकता है। दोनों ही अपने-अपने अंदाज से व्यापार करते हुए सफल हो सकते हैं। वजह यह है कि देश की बढ़ती जनसंख्या पुराने को बरकरार रखते हुए नए को भी आत्मसात् कर लेती है।

समाज की नब्ज की पहचान करें उद्यम

हमारे देश में धार्मिक केंद्रों पर मत्था टेकने पहुँचनेवाले युवाओं की संख्या में जबरदस्त तेजी देखने में आई है। इस युवा आबादी में 25 वर्ष की वय तक के लोग शामिल हैं, जो हमारी कुल आबादी का 50 प्रतिशत के लगभग हैं। यह युवा पीढ़ी जब विभिन्न धार्मिक केंद्रों पर जाती है तो शाकाहार को तरजीह देती है। इस कारण उसकी आमद ऐसे धार्मिक स्थानों पर सड़क किनारे लगनेवाले खोमचे या ठेलेवालों के यहाँ भी ज्यादा होती है। इसे देखते हुए दुनिया की दूसरे नंबर की खाद्य शृंखला मैकडॉनल्ड जम्मू के कटरा में पहला शाकाहारी आउटलेट खोलने जा रही है। इसके बाद अमृतसर के स्वर्ण मंदिर के पास शाकाहारी आउटलेट खोलने जा रही है। इसके बाद मैकडॉनल्ड के 119 देशों में 33 हजार से अधिक आउटलेट्स हैं, जहाँ प्रतिदिन लगभग 7 करोड़ ग्राहक विभिन्न खाद्य उत्पादों का लुक्फ उठाते हैं। लेकिन बात जब मैकडॉनल्ड के मेन्यू की आती है तो पहली बार उसे शाकाहार की तरफ जाते देखा गया है। गौरतलब है कि मैकडॉनल्ड का दुनिया के किसी भी कोने में स्थित आउटलेट का मेन्यू एक समान है। हालाँकि वर्ष 1996 में जब यह भारत आई तो उसने गौ-मांस से बने व्यंजनों से किनारा करना उचित समझा। अधिसंख्य भारतीय गौ-मांस केंद्रित खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं करते हैं।

इसके पहले दुनिया के विख्यात सैंडविच ब्रांड सबवे ने पिछले साल नोएडा की एमिटी यूनिवर्सिटी में अपना पहला शाकाहारी आउटलेट खोला था। इसके बाद मुंबई के उपनगर घाटकोपर में उसने दूसरा शाकाहारी आउटलेट खोला, जहाँ गुजराती ज्यादा रहते हैं। गुजरातियों का शाकाहार-प्रेम देखते हुए ही अहमदाबाद का भगवती ग्रुप ऑफ होटल्स देश भर में शाकाहारी होटल खोलने की योजना पर काम कर रहा है। वह उन शहरों में अपने होटल खोलेगा, जहाँ गुजराती आबादी अच्छी संख्या में है। सच तो यह है कि धीरे-धीरे युवाओं के बीच शाकाहार एक स्टाइल स्टेटमेंट बनकर उभर रहा है। पर्यटकों के बीच बाइबिल का दर्जा प्राप्त ‘लोनली प्लेनेट’ भारतीय पर्यटकों के मद्देनजर ही अपने रूप-स्वरूप में बदलाव ला रही है। उसने भारतीय पर्यटकों के बीच 10 करोड़ से अधिक पर्यटन-केंद्रित किताबें बेचने में सफलता हासिल की है। वर्ष 2010 के 1.3 करोड़ की तुलना में इस वर्ष 1.6 करोड़ भारतीय पर्यटकों को देखते हुए ही लोनली प्लेनेट ने अपनी किताबों में यह बदलाव किया है। एक अनुमान है कि वर्ष 2050 तक 5 करोड़ से ज्यादा भारतीय पर्यटक दुनिया की सैर पर जाएँगे।

भारतीयों के लिहाज से पर्यटन-केंद्रित किताब लॉञ्च करने से पहले लोनली प्लेनेट ने तीन साल तक देश के चुनिंदा 100 पर्यटन केंद्रों पर व्यापक रिसर्च की। इस रिसर्च से कंपनी को पता चला कि भारतीय पर्यटक सैर-सपाटे के दौरान सुरक्षा को तरजीह देते हैं तथा समूह या परिवार संग यात्राएँ करना पसंद करते हैं। वे पर्यटक स्थलों से जुड़े किसे-कहानियों या अपनी यादों को अपने यार-दोस्तों या परिचितों संग बाँटते हैं। अमेरिका या यूरोप के पर्यटक जहाँ शरीर और मन को शांति देने के लिए भ्रमण करते हैं, वहाँ भारतीय अपनी हरेक यात्रा का भरपूर आनंद उठाना चाहते हैं। वह खर्च की गई रकम का एक-एक पैसा वसूल करना चाहते हैं। इसके अलावा भारतीय स्थापित ब्रांड की खरीदारी में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। इन्हीं सब बातों को लोनली प्लेनेट ने नए संस्करण में स्थान दिया है।

फंडा यह है कि अगर आप समाज में आ रहे बदलाव पर निगाह रखेंगे तो इससे अपने आप ही नए व्यापारिक अवसर सामने आएँगे। इन बदलावों को पहचानकर नए उद्यमी जबरदस्त फायदा उठा सकते हैं।

चिंता-समाधान को भी बेच सकते हैं

मुंबई के एक उपनगर सायन में स्थित है एस.आई.ई.एस. कॉलेज। यहाँ पर चलनेवाले तीन वर्षीय बिजनेस मैनेजमेंट पाठ्यक्रम में बतौर विभागाध्यक्ष काम करती हैं अर्चना। वह एक युवा माँ हैं, जो एक बच्ची अनन्या को जन्म देने के बाद 18 माह के अवकाश पर कॉलेज से दूर रहीं। अब कॉलेज के नियमों के तहत उन्हें और ज्यादा अवकाश नहीं मिल सकता था और वह इस स्थिति में नहीं थीं कि अनन्या की खातिर ही सही, अपनी नौकरी को दाँव पर लगाएँ। किसी अन्य मध्य वर्ग कामकाजी महिला की तरह आर्थिक असुरक्षा के चलते उन्हें कॉलेज जॉड्न करना पड़ा। अनन्या के जन्म के बाद पल भर के लिए भी उससे दूर नहीं होनेवाली अर्चना को कॉलेज में उससे अलग रहकर लगभग 10 घंटे बिताना असंभव सा लगता था। उन्हें कॉलेज में छात्रों को पढ़ाते हुए पल-पल अनन्या की ही फिक्र लगी रहती थी।

तभी उन्हें एक ‘क्रेश’ के बारे में पता चला, जो मुख्यतः उन जैसी कामकाजी महिलाओं के लिए ही काम करता था। वास्तव में वह अर्चना जैसी कामकाजी महिलाओं के छोटे बच्चों की परवरिश से जुड़ी चिंताओं को समझते हुए ही खोला गया था। अब अर्चना अनन्या को वहाँ पर छोड़ कॉलेज चली जातीं। इसके बावजूद कॉलेज में छात्रों को पढ़ाते हुए उनके दिमाग में अनन्या ही छाई रहती। उसके दूध पीने या अन्य शारीरिक गतिविधियों के समय की बाबत उनकी चिंता बढ़ जाती थी। हालाँकि पहले ही दिन जब उन्हें अनन्या के दूध का समय होने का ख्याल आया तो उसी वक्त उनके मोबाइल पर बीप-बीप की आवाज उभरी, जो किसी एस.एम.एस. या एम.एम.एस. के आने की सूचक थी। उन्होंने जब मेसेज बॉक्स खोलकर देखा तो उसमें अनन्या से जुड़ी उनकी हर चिंता को एम.एम.एस. दूर कर देता। वह उसकी फोटो देख निश्चिंत हो जाया करतीं कि क्रेश मालिक उसका पूरा ख्याल रख रहा है। एक बार तो उसके सोने के समय पर आए एम.एम.एस. को देख अर्चना अपने को रोक नहीं सकीं और क्लास में ही उन्होंने मोबाइल पर आई अनन्या की फोटो को किस कर लिया।

सच तो यह है कि इक्कीसवीं सदी के क्रेश कामकाजी महिलाओं, खासकर जो छोटे बच्चों की माँ भी हैं, की चिंताओं को भली-भाँति समझते हैं। यही वजह है कि वे ई-मेल या फोन या दोनों के ही जरिए उन्हें बच्ची से जुड़ी हर बात से अवगत कराते रहते हैं। यह सुविधा घंटे-घंटे भर की अवधि में क्रेश में बच्चे को छोड़कर जानेवाली माँओं की चिंता को देखते ही शुरू की गई। अब माँ जब चाहे, अपने बच्चे के हाल-चाल मोबाइल पर ले सकती है। वास्तव में

प्रत्येक अभिभावक या पहली बार संतान को जन्म देनेवाले अभिभावकों के लिए बच्चे को लेकर यह चिंता स्वाभाविक है। इस अनूठे तरीके से वे अपने बच्चे के प्रति बेफिक्र हो अपने-अपने काम को अंजाम दे सकते हैं। इस तरह के डे-केयर सेंटर तय शुल्क के अलावा 500 रुपए अतिरिक्त की दर पर यह सुविधा उपलब्ध कराते हैं। अर्चना जैसी माँएँ अक्सर स्वयं मन होने पर क्रेश मालिक को एस.एम.एस. कर अपने बच्चे की स्थिति के बारे में जानकारी कर लेती हैं। इस सुविधा ने क्रेश मालिकों को पैसा कमाने तो अभिभावकों को बच्चों के प्रति बेफिक्र होने का एक नया जरिया उपलब्ध कराया है। यह दोनों के लिए ही फायदे का सौदा है।

फंडा यह है कि अगर आपको मालूम है कि कोई चीज कैसे बेची जा सकती है तो आप चिंता-समाधान को भी बेच सकते हैं।
इसके लिए जरूरत थोड़ा अलग सोचने की है।

बेहतर प्रबंधन के लिए सही फीडबैक है जरूरी

लगभग 10 साल पहले एक पुलिसकर्मी आयुर्वेद के डॉक्टर वशिष्ठ सुनील के पास पहुँचा। वह डॉक्टर से बोला, ‘डॉक्टर साहब, मेरे पिताजी 80 साल के रिटायर्ड शख्स हैं। वे पिछले 13 साल से हिचकी की समस्या से जूझ रहे हैं। क्या आपके पास इसके लिए कोई दवा है?’ यह सुनने के बाद डॉक्टर बोला, ‘आपके पिताजी हैं कहाँ?’ पुलिसकर्मी बोला, ‘घर पर।’ इस पर डॉक्टर ने कहा, ‘उन्हें क्लीनिक लेकर आइए। उनकी अच्छे से जाँच के बाद ही मैं कोई दवा दे सकूँगा।’ यह सुनने के बावजूद वह लक्षणों के आधार पर दवा देने की जिद पर अड़ा रहा। उसका कहना था कि उसकी ड्यूटी ‘बंदोबस्त’ में लगी है और वह बाद में अपने पिता को क्लीनिक ले आएगा। अंततः डॉक्टर ने उसे 250 मि.प्रा. के 10 कैप्सूल (यहाँ दवा का नाम नहीं दे रहे हैं, क्योंकि इस स्तंभ के जरिए हम किसी खास दवा का प्रचार नहीं करना चाहते) दिए और कहा कि इसे वह अपने पिताजी को दिन में तीन बार खिलाए। दवा लेकर पुलिसकर्मी चला गया और दोबारा लौटकर नहीं आया।

इस घटना के लगभग 5 साल बाद उसी डॉक्टर के क्लीनिक पर दो अन्य लोग पहुँचे। वे भी किसी शख्स के लिए हिचकी की दवा माँग रहे थे, जिसे लगभग पंद्रह दिन पहले हिचकियों का जबरदस्त दौरा पड़ा था। वह शख्स शहर के एक नर्सिंग होम में भरती था। उनकी बात सुनने के बाद डॉक्टर बोला, ‘जब तक मैं मरीज का मुआयना नहीं कर लेता, मैं आपको दवा नहीं दे सकता हूँ।’ इस पर वे दोनों एक साथ बोले, ‘लेकिन कुछ साल पहले आपने महज तीन दिन की खुराक देकर 13 साल से हिचकी की समस्या से पीड़ित एक शख्स का इलाज किया था। वह मरीज एक पुलिसकर्मी का पिता था, इसलिए आपने बगैर देखे दवा दे दी थी।’ यह सुनते ही डॉक्टर को पाँच साल पहले का घटनाक्रम याद आ गया। उसने उनसे पूछा, ‘आपको इसकी जानकारी कैसे है?’ जवाब में उन्होंने कहा, ‘उसने ही हमें आपके पास भेजा है।’ अब डॉक्टर ने उन्हें भी दवा दे दी।

इसके बाद डॉक्टर काफी देर तक उस पुलिसकर्मी के गैर-जिम्मेदाराना रवैए के बारे में सोचता रहा। उसे गुस्सा आ रहा था कि आखिर वह पुलिसकर्मी यह बताने क्यों नहीं आया कि महज दस खुराक ने उसके पिता की 13 साल पुरानी हिचकी की समस्या खत्म कर दी। फिर उसे अहसास हुआ कि इस तरह की हरकत ज्यादातर लोग करते हैं। अगर उस पुलिसकर्मी ने डॉक्टर को दवा के कारण साबित होने की जानकारी यानी फीडबैक दिया होता तो संभव है कि डॉक्टर उसका इस्तेमाल कहीं अधिक आत्मविश्वास और ठोस ढंग से करता।

‘दैनिक भास्कर’ में एक चीफ फाइनेंस ऑफिसर (सी.एफ.ओ.) हैं पी.जी. मिश्रा। वह हमेशा जोर देकर कहते हैं कि जब कोई सूचना माँगी या दी जाती है तो यह जिम्मेदारी उस सूचना पानेवाले की है कि वह वापस आकर सूचना देनेवाले को उसके सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव के बारे में बताइए। इस तरह किसी संवाद प्रक्रिया को तार्किक ढंग से परखा जा सकता है। इस तरह ही बीच की खामियों को दूर किया जा सकता है। मैंने व्यक्तिगत तौर पर उन्हें इस प्रक्रिया को अपनाने के लिए अपने सहयोगियों के साथ जदोजहद करते देखा है।

फंडा यह है कि सूचना एवं प्रसारण के बेहतर प्रबंधन के लिए जरूरी है कि आपको इसके बारे में समुचित फीडबैक भी मिले। इसके बाद ही आप जान पाएँगे कि आपके द्वारा दी गई जानकारियाँ दूसरों तक कितने प्रभावी ढंग से पहुँच रही हैं और वे उसे किस तरीके से ले रहे हैं।

अपने उपभोक्ता वर्ग की करें सही पहचान

केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने हाल में बताया कि वर्ष 2013 तक भारत में 10 करोड़ लोग 60 वर्ष या अधिक उम्र के होंगे। दूसरी तरफ मर्सिंडीज, ऑडी और बी.एम.डब्ल्यू. सरीखी लाजरी कार निर्माता कंपनियाँ 25 से 30 लाख रुपए की कीमत में छोटी कार पेश करने की संभावनाओं पर काम कर रही हैं। उनकी निगाह देश की युवा आबादी पर है, जो अपने जीवन के शुरुआती दौर में ही लाजरी ब्रांड का उपभोग कर लेना चाहती है। वे उन ब्रांड का उपभोग नहीं करना चाहते हैं, जो आमजन द्वारा भी इस्तेमाल में लाए जा रहे हैं। यह बात एक मार्केट स्टडी में मर्सिंडीज बेंज कंपनी को पता चली है। यह स्टडी बताती है कि छोटी लाजरी कारों की बिक्री बढ़ी है। सन् 2011 में 1,400 छोटी लाजरी कारों बिकी थीं तो 2012 में 100 प्रतिशत से ज्यादा की बढ़त के साथ 3,500 छोटी लाजरी कारों भी बिक सकती हैं। ज्ञात हो कि इस अवधि में बड़ी लाजरी कारों की बिक्री में महज 5 से 10 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई है।

इसी कारण मर्सिंडीज बेंज ने सितंबर में बी-क्लास स्पोर्ट्स कार पेश करने की योजना बनाई है। वह अपनी ए-क्लास का एंट्री लेवल मॉडल अगले वर्ष जुलाई में पूरी दुनिया में एक साथ पेश करेगी। अनुमान है कि 25 से 30 लाख रुपए की कीमतवाला यह मॉडल अगले पाँच वर्षों में कंपनी को 50 प्रतिशत बिक्री का आँकड़ा छूने में मदद करेगा। इस वर्ष दीपावली पर ही कंपनियाँ 30 नए मॉडल भारतीय बाजार में पेश करेंगी। इसमें नई मारुति 800 से लेकर जगुआर एक्सजेएल मॉडल शामिल हैं। फिलहाल भारत में तमाम कैटेगरी में 24 लाख कारें साल में बिकती हैं।

यामाहा कंपनी भी मध्य वर्ग के मध्य आयु के लोगों के लिए स्कूटर उत्पादन को और गति देने पर काम कर रही है। उसका इरादा उन लोगों को स्कूटर उपलब्ध कराने का है, जो दो से अधिक सवारी बैठाकर चलना चाहते हैं। यद्यपि युवाओं में बाइक का जबरदस्त क्रेज है, लेकिन पारिवारिक वाहन के तौर पर स्कूटर को कहीं अधिक सुरक्षित माना जाता है। यामाहा की निगाह महिलाओं और युवतियों पर भी है, जो धीरे-धीरे आत्मनिर्भर हो रही हैं। वे अपने लिए सुरक्षित दोपहिया वाहन को प्राथमिकता देती हैं। 1 अरब 30 करोड़ की आबादीवाले देश में आधी आबादी 25 साल से कम उम्र की है। ऐसे में अगर कंपनियाँ उन्हें ध्यान में रख रणनीति बना रही हैं तो इसमें गलत भी क्या है? आखिरकार युवा खर्च करने में ज्यादा सोच-विचार नहीं करते हैं। लेकिन बड़ी बचत के साथ 10 करोड़ की संख्या तक पहुँचनेवाले 60 वर्ष से अधिक उम्र के लोग भी कोई छोटा समूह

नहीं हैं। यह आँकड़ा अमेरिकी आबादी का एक-तिहाई है तो ब्रिटेन की आबादी से 40 प्रतिशत अधिक। विभिन्न महँगे या लाजरी उत्पाद खरीदनेवालों में इस वर्ग की अच्छी हिस्सेदारी है। गौरतलब है वैश्विक स्तर पर औसत आयु 67 साल है। जापान में यह सर्वाधिक 83 वर्ष है।

भारत में उम्र और ग्राहक वर्ग पर हुए अध्ययन सोचने को मजबूर करते हैं। 60 वर्ष की वय के नजदीक पहुँची 10 करोड़ की आबादी एंटी एजिंग क्रीम समेत उम्र के लक्षण छिपानेवाली टैबलेट्स का उपभोग करती है। ये ऐसे उद्योग हैं, जिनका सालाना टर्नओवर खरबों रूपए का है। तकनीक का ज्यादातर इस्तेमाल वरिष्ठ नागरिक करते हैं। इसकी मदद से वे अपने जीवन को सरल बना रहे हैं। इस बाबत किया गया एक अध्ययन बताता है कि उम्र के पायदान चढ़ते लोग तेजी से तकनीक को गले लगा रहे हैं।

फँडा यह है कि अगर आप किसी उत्पाद की निर्माण प्रक्रिया या मार्केटिंग से जुड़े हैं तो भारतीय उपभोक्ता को पहचानें। भारत का प्रमुख उपभोक्ता वर्ग या तो 60 वर्ष की उम्र का है या 25 वर्ष से कम उम्र का। बीच का वर्ग बतौर उपभोक्ता मध्य वय का ही है।

मंदी के दौर में ग्रामीण क्षेत्रों की ओर करें रुख

बढ़ती महँगाई के कारण लोगों ने खरीदारी का विचार त्याग दिया है या उचित समय का इंतजार कर रहे हैं। इससे खासकर शहरों में उत्पादों की बिक्री प्रभावित हुई है। वास्तव में, इस समस्या का समाधान हमारे देश के ग्रामीण इलाकों या शहरों में तब्दील होते कस्बों या गाँवों में निहित है। इनकी संख्या देश भर में 5,000 के लगभग है। यहाँ के लोग बड़े शहरों में खरीदारी के लिए आते हैं। इसे देखते हुए पैराशूट ब्रांड तेल बनानेवाली मैरिको लिमिटेड की सी.ई.ओ. सौगता गुप्ता की बात विचारणीय हो जाती है। उनका मानना है कि उभरते शहरों की आबादी खर्च करने को तैयार है; लेकिन एफ.एम.सी.जी. उत्पाद बनानेवाली कंपनियाँ उन तक पहुँच नहीं पा रही हैं। इसे समझते हुए ही कंपनी ने खास रणनीति बनाई है।

भारत के ग्रामीण इलाकों के अलावा दुनिया के कुछ ऐसे देश भी हैं, जो उचित उत्पादों पर पैसा खर्चने के लिए तैयार हैं। सब-सहारा देश, इंडोनेशिया, दक्षिण अफ्रीकी महाद्वीप इत्यादि कुछ ऐसे केंद्र हैं, जहाँ लोग मध्य कीमतों के कंज्यूमर उत्पादों की राह देख रहे हैं। अब जरा एक नजर डालिए त्वरित सेवा देनेवाले रेस्ट्राँ व्यवसाय पर। इनके लिए छोटे का मतलब ही बड़ा है। इसी सिद्धांत पर वे व्यवसाय में छाई मंदी को छाँटने का प्रयास कर रहे हैं। इन्होंने समोसों को ऐसा आकार दिया, जो 5 रुपए के लिहाज से मुफीद हो। इसी तरह पिज्जा, कचौरी, सैंडविच, बर्गर को भी 10 रुपए के खाँचे में फिट करनेवाला आकार दिया गया। भले ही इनका आकार छोटा हो, लेकिन लोगों की तेज भूख शांत करने में ये अब भी सफल हैं। इसी तर्ज पर पूरी थाली के 70 रुपए कीमतवाले लघु संस्करण की बिक्री में 70 प्रतिशत का इजाफा देखा गया है।

डोमिनोज और मैकडॉनल्ड भी खाद्य उत्पादों के लघु संस्करण पेश कर रहे हैं, जो लोगों की जेब में समा सकें। यद्यपि इन शृंखलाओं में खाने को शेयर करने की प्रवृत्ति कम हुई है, लेकिन वैयक्तिक तौर पर खरीदारों की संख्या बढ़ी है। इसकी वजह यह है कि इन्होंने तुरंत खाने की इच्छा रखनेवालों के लिए कम कीमत में उत्पाद पेश किए हैं। भारत में मैकडॉनल्ड के 257 रेस्ट्राँ में से 10 प्रतिशत हाईवे पर स्थित हैं। कंपनी के प्रबंधकों ने अपने ब्रांड को इन जगहों पर नए सिरे से स्थापित करने की रणनीति बनाई है। हाईवे पर ग्रामीण इलाकों में रहनेवाली आबादी की शिरकत बढ़ी है। अब इन हाईवे आउटलेट से कंपनी को 20 प्रतिशत तक आय हो रही है।

डोमिनोज और मैकडॉनल्ड सरीखे ब्रांड के लिए सबसे बड़ी चुनौती अपनी छवि को बदलना है। अभी तक इसके खाद्य उत्पादों को कुलीन तबके से जोड़कर देखा जाता है, लेकिन अब ये ब्रांड इन्हें आम जन तक पहुँचाना चाहते हैं। गौरतलब है कि 87 प्रतिशत भारतीय सड़क मार्ग से यात्रा करते हैं। ऐसे में इन जैसे ब्रांड के लिए जरूरी हो गया है कि वे त्वरित खाद्य पदार्थ देनेवाले उत्पाद के तौर पर सड़क किनारे अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज कराएँ। इससे ही मध्य वर्ग कहीं आसानी के साथ इनसे जुड़ाव स्थापित कर पाएगा। इसी रणनीति पर देश के विभिन्न हिस्सों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे वैश्विक ब्रांड भी अमल कर रहे हैं। कॉफी वर्ल्ड, पिज्जा कॉर्नर, क्रीम एंड फज ने इस रणनीति पर अमल करते हुए ही अपनी बिक्री में 15 प्रतिशत का इजाफा किया है। यानी आकार में छोटा और कीमत में सर्वसुलभ उत्पाद लोगों तक तेजी से पहुँच बना रहा है।

फंडा यह है कि अगर आपकी बिक्री गिर रही है तो ग्रामीण क्षेत्रों की ओर रुख करें। अपने उत्पाद सर्वसुलभ बनाकर इसकी वैल्यू बढ़ाएँ। इस तरह ही छाई मंडी का कुहरा छाँट सकेंगे। ध्यान रखें कि ग्रामीण बाजार शहरों की नकल पर चल पड़ा है।

उत्पाद को भावनाओं से जोड़ बढ़ाएँ कारोबार

अर्जुन कॉलेज में पढ़नेवाला एक आकर्षक युवक है। उसे कई लड़कियाँ अलग-अलग कारणों से फोन करती हैं। अर्जुन भी अपने फोन की कॉलर ट्यून लड़कियों के हिसाब से बदलता रहता है। उसके द्वारा लगाई गई ट्यून अकसर लड़कियों को अचंभित कर देती है। कॉलर ट्यून से उन्हें पता चलता है कि अर्जुन उनकी पसंद-नापसंद को कितनी तवज्ज्ञ देता है। दूसरे शब्दों में कहें तो अर्जुन ने महज एक मोबाइल फोन से अपनी कई गर्लफ्रेंड्स को साध रखा है। प्रश्न उठता है कि वह ऐसा कैसे कर लेता है? उसने लड़कियों की रुचियों के लिहाज से पुरानी फिल्म ‘आराधना’ से लेकर दीपिका पादुकोण की हालिया प्रदर्शित फिल्म ‘कॉकटेल’ तक के गाने सेट कर रखे हैं। वह 5 रुपए में गाने को डाउनलोड करता है और 30 रुपए मासिक कॉलर ट्यून का शुल्क भरता है। वह तीन दिन से ज्यादा किसी भी कॉलर ट्यून का इस्तेमाल नहीं करता। कई-कई बार तो वह दिन भर में तीन बार तक ट्यून बदलता है।

देश भर में अर्जुन जैसे 4 करोड़ 80 लाख पेड यूजर्स हैं, जो विभिन्न मोबाइल सेवा-प्रदाता कंपनियों को 5 रुपए गाना डाउनलोड करने के और 30 रुपए मासिक शुल्क चुकाते हैं। ऐसे यूजर्स की संख्या 12 से 18 प्रतिशत सालाना की दर से बढ़ रही है। एयरटेल और आइडिया जैसी कंपनियों के मुताबिक, कॉलर ट्यून डाउनलोड करनेवाले प्रत्येक दस यूजर्स में से सात हर माह ट्यून बदल देते हैं। इसके एवज में टेलीफोन कंपनियों को सिर्फ इसी मद में 2,000 करोड़ रुपए सालाना की आय होती है। कंपनियाँ इसे ‘ए.बी.सी. बिजनेस’ करार देती हैं। ए यानी एस्ट्रोलॉजी, बी यानी बॉलीवुड और सी यानी क्रिकेट। ये तीनों चीजें वैल्यू एडेड सर्विस (वी.ए.एस.) में आती हैं और इनके प्रति देश भर में दीवानगी स्पष्ट देखी जा सकती है। डिलॉयटे टुचे थोमसु इंडिया प्राइवेट लिमिटेड की पिछले माह जारी रिपोर्ट के मुताबिक, वी.ए.एस. का वैश्विक बाजार 11,613 करोड़ रुपए है, जिसके वर्ष 2013 तक 21,000 करोड़ रुपए हो जाने की संभावना है। वैश्विक स्तर पर उस समय भारत की इस मद में 20 प्रतिशत हिस्सेदारी होगी।

इस व्यवसाय की एक ऐसी खूबी है, जो अन्य दूसरे व्यवसायों पर भी लागू होती है। वह यह है कि वी.ए.एस. के मद में सबसे ज्यादा आय कॉलर ट्यून से होती है। यह तब है जब कॉलर ट्यून सेट करनेवाला शख्स उसका जरा भी आनंद नहीं ले पाता। कर्णप्रिय धुन का मजा उसे फोन करनेवाले ही ले पाते हैं। भारतीय हमेशा दूसरों को प्रसन्न करने के लिए जाने जाते हैं। जब भी कोई किसी परिचित या रिश्तेदार के यहाँ जाता है तो साथ में बड़ों के लिए फल और बच्चों के लिए

चॉकलेट या मिठाई लेकर जाता है। इसी तरह हम जब भी किसी बीमार शख्स को देखने जाते हैं तो फल जरुर ले जाते हैं। सच तो यह है कि हॉर्लिंक्स एक ऐसा ब्रांड है, जिसने अपनी ऐसी ही इमेज बनाने में सफलता हासिल की है। उसकी मार्केट इमेज कुछ इस तरह की बन चुकी है कि यदि बीमार शख्स जल्दी ठीक होना चाहता है तो उसे हॉर्लिंक्स दिया जाए। इस इमेज की बदौलत हॉर्लिंक्स की बिक्री में जबरदस्त तेजी आई है। देश की कुल बिक्री का 70 प्रतिशत हिस्सा दक्षिण भारत का है। वहाँ जब भी कोई अस्पताल में किसी को देखने जाता है तो हॉर्लिंक्स खरीदता है। यही वजह है कि हॉर्लिंक्स ने बाजार में तेजी से बढ़त बनाई है।

फंडा यह है कि हमारे देश में दूसरों की मदद करने या उनके लिए जीने की संस्कृति है। इसे समझते हुए अगर हम किसी ब्रांड को इस भावना से जोड़ें तो अच्छी कमाई कर सकते हैं। इस स्मार्ट मार्केटिंग का हॉर्लिंक्स एक बेहतरीन उदाहरण है।

वैश्विक पहचान के लिए सरल रखें नाम

अपने यहाँ ज्यादा-से-ज्यादा पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए फिलीपींस 'इट्स मोर फन इन फिलीपींस' स्लोगन का इस्तेमाल करता है। अमेरिका इसी तर्ज पर 'अमेजिंग अमेरिका' तो अपने देश में केरल के पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए 'गॉड्स ऑन कंट्री' का इस्तेमाल होता है। 'इंडियन एक्सप्रेस' के पर्यटन से जुड़े अखबार के लिए काम करते हुए मुझे वैश्विक स्तर पर कई टूरिज्म मीट्स में शामिल होने का अवसर मिला। सच मानिए, मुझे कई के नाम तक याद नहीं आ रहे हैं, क्योंकि उनके साथ इतने सारे विशेषणों का इस्तेमाल किया गया था कि उन्हें याद रखना मुश्किल है। लेकिन पिछले माह तुर्की के इस्तांबुल की यात्रा ने मेरी धारणा बदल दी। यह यात्रा दि इस्तांबुल फाउंडेशन फॉर कल्चर एंड आर्ट्स (आई.के.एस.वी.) की 40वीं वर्षगांठ का एक हिस्सा थी। इस संस्था का उद्देश्य वैश्विक स्तर पर इस्तांबुल के पर्यटन स्थलों को प्रमोट करना है। संस्था ने राष्ट्रीय विमानन कंपनी तुर्की एयरलाइंस से समन्वय किया हुआ है। इसके परिणामस्वरूप विमानन कंपनी ने इस्तांबुल को 'हब एंड स्पोक सिस्टम' में तब्दील कर दिया है। इसका मतलब यह है कि विमानन कंपनी दुनिया के कोने-कोने से आनेवाले पर्यटकों को एक स्थान यानी इस्तांबुल लेकर आती है, फिर वहाँ से उन्हें अन्य स्थानों पर ले जाया जाता है।

दि इस्तांबुल फाउंडेशन फॉर कल्चर एंड आर्ट्स (आई.एफ.सी.ए.) की ला फुरा डेल बाउस नाम की थिएटर कंपनी भी है, जो स्ट्रीट थिएटर और ओपेरा के लिए जानी जाती है। आई.एफ.सी.ए. और इस कंपनी का प्रतीक चिह्न ट्यूलिप फूल की चार पंखुड़ियाँ हैं। 21 जून को इस समारोह की शुरुआत में कलाकारों और नर्तकों के एक समूह ने आकाश से छलाँग लगाते हुए मानव शृंखला बनाई। सैकड़ों कलाकार एक रस्सी के सहारे एक के नीचे एक शैली में लटक रहे थे। लेकिन कोई भी यह नहीं समझ पा रहा था कि रस्सी का सिरा कहाँ से शुरू हो रहा है। इस मानव शृंखला को उक्त कंपनी पिछले 40 वर्षों से परफॉर्म करती आ रही है। इसे स्पेन और तुर्की के टेक्नीशियंस की देख-रेख में अंजाम दिया जाता है। इस वर्ष उन्होंने अपनी जिस सबसे छोटी कठपुतली का आसमान में अनावरण किया। वह महज 9 मीटर लंबी थी। देश और दुनिया भर में कार्यक्रम देनेवाले संस्था के ज्यादातर कलाकार इस्तांबुल के हैं। उन्हें गहन प्रशिक्षण के बाद दल में शामिल किया जाता है। यह मामला कुछ-कुछ हमारे 'गरबा' नृत्य जैसा है। गुजरात के इस लोकप्रिय नृत्य के लिए लोगों को बाकायदा प्रशिक्षण दिया जाता है। इस वर्ष भी गरबे के लिए हजारों आवेदकों में से महज 250 को चुना गया है। उन्हें प्रशिक्षण देने का काम शुरू कर दिया गया है। इस गरबे

का आयोजन राज्य के पर्यटन स्थलों और होटलों को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। अब इस्तांबुल से जुड़े इस भव्य आयोजन के निहितार्थ पर आते हैं। इसका नाम क्या है? इसके नाम के साथ कोई स्लोगन यानी विशेषण नहीं जुड़ा है। इसे ‘इस्तांबुल-इस्तांबुल’ के नाम से जाना जाता है। इसके बारे में पूछने पर आई.एफ.सी.ए. के डायरेक्टर गोर्गुन टेनर कहते हैं, ‘कार्यक्रम के सिलसिले में एकत्र इस विशालकाय भीड़ में एक भी ऐसा शख्स नहीं है, जो इसे नाम से न जानता हो। यह तब है जब लगभग 100 देशों के पर्यटक इसके साक्षी बनने के लिए यहाँ जुटते हैं। यह सारा खेल सरल नाम का है।’

फंडा यह है कि अगर आप चाहते हैं कि विभिन्न देशों के अलग-अलग भाषा और संस्कृति से जुड़े लोग आपके उत्पाद या ब्रांड का नाम याद रखें तो उसे हरसंभव सहज-सरल रखें। इसके बाद उसे प्रमोट करने में किसी तरह का भ्रम नहीं रहेगा।

फिक्स्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर का हो 24/7 इस्तेमाल

एक महिला ऑफिस में प्रातः 7 बजे से दोपहर 3 बजे की शिफ्ट में काम करती थी। एक दिन वह ऑफिस से निकलते समय अपने कुछ पर्सनल हाईजीन प्रोडक्ट्स डेस्क की दराज में ही भूल गई। उसी डेस्क पर शाम 5 बजे की शिफ्ट में एक पुरुष कर्मचारी बैठता था। जब उसने दराज में उन चीजों को देखा तो उसने महिला के बारे में ऑफिस में अभद्र टिप्पणियाँ व अश्लील जोक करने शुरू कर दिए। अगले दिन यह मामला एच.आर. विभाग में पहुँचा। इसके बाद उस पुरुष कर्मचारी को बरखास्त कर दिया गया, जबकि उस महिला को भी दराज में किसी भी तरह का निजी और खासकर महिलाओं से संबंधित सामान न रखने की हिदायत दी गई। मंदी के इस दौर में आजकल कई ऑफिसों में रीयल एस्टेट की लागत को घटाने के लिए डबल शिफ्ट की व्यवस्था में एक ही इन्फ्रास्ट्रक्चर का इस्तेमाल किया जा रहा है।

बैंगलुरु स्थित एमफेसिस जैसी सॉफ्टवेयर सेवाएँ देनेवाली फर्म ने कुछ महीने पहले अपनी कुछ जगहों पर डबल शिफ्ट व्यवस्था लागू की। प्रातः 7 बजे से दोपहर 3 बजे तक और शाम 5 बजे से रात 1 बजे तक। बीच के दो घंटे साफ-सफाई के लिए रखे गए। एमफेसिस के 36,000 कर्मियों में कम-से-कम 20 प्रतिशत कर्मचारी इस व्यवस्था के तहत काम करते हैं। इस नई व्यवस्था को सीट साझा करना कहा जाता है। यह बी.पी.ओ. इंडस्ट्री में रियल-टाइम सपोर्ट स्टाफ के लिए पहले से थी; लेकिन यह पहली बार है, जब इसे सॉफ्टवेयर डेवलपर्स के लिए भी अमल में लाया जा रहा है।

पश्चिमी बाजार में मंदी के मौजूदा हालात और इसके नतीजतन आई.टी. संबंधी कारोबार के सुस्त होने के चलते ज्यादातार कंपनियों का फोकस इन दिनों अपनी संचालन लागत घटाने पर है, ताकि उनका लाभांश बढ़ सके या कम-से-कम पिछले साल के स्तर पर ही रहे। कर्मियों के वेतन से छेड़छाड़ नहीं की जा सकती, लिहाजा कंपनियाँ अपनी रीयल एस्टेट व ट्रांसपोर्टेशन लागत कम करने में लगी हैं और आगे चलकर तकनीकी व संचार लागत में भी कुछ कटौती करेंगी। आई.टी. इंडस्ट्री अपनी संचालन लागत का 64-65 प्रतिशत हिस्सा वेतन व प्रशिक्षण पर खर्च करती है, जबकि रीयल एस्टेट पर 23 से 24 प्रतिशत और ट्रांसपोर्टेशन पर 12 प्रतिशत खर्च होता है। विप्रो टेक्नोलॉजीज के वाइस प्रेसिडेंट (एच.आर.) का कहना है कि वे भी एमफेसिस की तर्ज पर अपनी संचालन लागत घटाने के लिए सीट साझा करने की संभावनाओं पर विचार कर रहे हैं।

वास्तव में टोक्यो जैसे शहरों में नागरीय निकाय ट्रैफिक का दबाव घटाने के लिए उद्यमियों से शिफ्ट सिस्टम लागू करने की गुजारिश करते हैं। मुंबई के निकट एक छोटे से मध्य उपनगरीय इलाके डॉनिवली में नागरीय निकाय ने शाम के कुछ घंटों के लिए सरकारी स्कूल को किराए पर लिया है, जहाँ पर हफ्ते में दो दिन बाजार लगता है। ऐसा उसने इसलिए किया, ताकि ट्रैफिक पर बढ़ते दबाव को कम किया जा सके। विभिन्न एजेंसियों द्वारा अपने मैनेजमेंट ट्रेनिंग प्रोग्राम्स या फिर कुछ स्पेशल क्लासेज के लिए सप्ताहांत में स्कूलों का इस्तेमाल काफी समय से किया जा रहा है और आज भी कुछ एजेंसियाँ रीयल एस्टेट लागत घटाने के लिए ऐसा कर रही हैं।

फँडा यह है कि सड़कों पर ट्रैफिक का दबाव कम करने या अपनी संचालन लागत घटाने और संसाधनों के समुचित दोहन के लिहाज से फिक्स्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर का 24/7 इस्तेमाल आज आम हो गया है। वैसे भी, हमें ऐसे इन्फ्रास्ट्रक्चर का ज्यादा-से-ज्यादा इस्तेमाल सुनिश्चित करना चाहिए, क्योंकि ये दिन में 10 घंटे तक बेकार पड़े रहते हैं। हमारे देश में स्कूल, कॉलेज व सिनेमा थिएटर्स ऐसी ही कुछ मिसाल हैं, जहाँ फिक्स्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर घंटों बेकार पड़ा रहता है।

पहले अवसर को हाथ से न जाने दें

यह बहुत पुरानी गाथा है। एक नवयुवक एक किसान की खूबसूरत बेटी से शादी करना चाहता था। वह किसान के पास उसकी बेटी का हाथ माँगने पहुँचा। किसान ने उसे ऊपर से नीचे तक गौर से देखा और कहा, ‘बेटा, जाकर उस मैदान में खड़े हो जाओ। मैं यहाँ से एक-एक करके तीन बैल छोड़ूँगा। यदि तुम इनमें से किसी भी बैल की पूँछ पकड़ने में कामयाब रहे तो मैं अपनी बेटी की शादी तुमसे कर दूँगा।’ युवक मैदान में जाकर खड़ा हो गया और पहले बैल के आने का इंतजार करने लगा। बाड़ का दरवाजा खुला और उसमें से एक मदमस्त व तगड़ा बैल उछलते हुए बाहर आया। युवक ने सोचा कि इसकी अपेक्षा अगले बैल को पकड़ना बेहतर होगा, लिहाजा वह एक किनारे दुबक गया और बैल को निकल जाने दिया।

एक बार फिर बाड़ का दरवाजा खुला और दूसरा बैल बाहर आया। यह पहलेवाले से भी ज्यादा भीमकाय और गुस्सैल नजर आ रहा था। युवक ने अब तक अपनी जिंदगी में ऐसा बैल नहीं देखा था। वह नथने फुलाए युवक को देख रहा था और उसके मुँह से लार टपक रही थी। युवक को लगा कि अगला बैल जैसा भी आए, लेकिन इसके मुकाबले तो उसे ही पकड़ना बेहतर होगा, लिहाजा एक बार फिर वह बाड़ के पीछे जाकर दुबक गया और उस बैल को भी जाने दिया। तीसरे बैल के लिए जैसे ही बाड़ का दरवाजा खुला, युवक के चेहरे पर मुसकान तैर गई। वह एक मरियल-सा सीधा-सादा बैल था। युवक उसे पकड़ने के लिए तैयार हो गया और जैसे ही वह बैल उसके करीब आया, उसने छलाँग मारकर उसे दबोच लिया। लेकिन यह क्या, उस बैल के तो पूँछ ही नहीं थी।

अब एक नई गाथा लेते हैं। एरविन जोसेफ एक सेल्स रिप्रेजेंटेटिव है और भारत में आधुनिक साइकिलें बेचता है। वह द्विटर यूजर भी है। द्वीट डेक फीचर पर उसने कुछ ऐसे शब्द चिह्नित किए, जो जब कभी भी किसी द्वीट में आए तो उसे इनके बारे में जानकारी मिल जाए, चाहे वह उन लोगों को ‘फॉलो’ करता हो या नहीं। इसके चलते उसे हर दिन ऐसे लोगों की ओर से ऐसे कई मेसेज मिलते, जिनमें उन्होंने अपनी द्वीट में ‘साइकिल’, ‘साइकिल ट्रैक’ या फिर ‘साइकिलिंग’ जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया होता। इसके बाद एरविन जोसेफ द्विट हैंडल को क्लिक करता और उस द्वीट करनेवाले व्यक्ति को वापस मेसेज भेजता कि उसके पास बेहतर विकल्प है। कुछ क्षणों के बाद वह अपने उस संभावित ग्राहक तक पहुँच जाता और बिक्री के संबंध में तरह-तरह की लुभावनी बातें करते हुए कुछ ही समय में डील फाइनल कर लेता।

एरविन अपने इस पहले अवसर को ऐसे लोगों के साथ संपर्क साधने में इस्तेमाल कर रहा है, जो जाने-अनजाने ट्रिटर पर साइकिल खरीदने की इच्छा व्यक्त करते हैं। वास्तव में, वह उन्हें शोरुम तक भी नहीं आने देता। यदि कोई व्यक्ति साइकिल का ट्रायल लेने पर जोर देता है तो एरविन खुद उसके घर साइकिल लेकर पहुँच जाता है और उसे इसका अनुभव कराता है। वह संपर्क करनेवाला पहला व्यक्ति होता है और अपनी रफ्तार भी बनाए रखता है। इसी वजह से वह इस तरह के तकरीबन 70 प्रतिशत मामलों में अपना माल बेचने में कामयाब हो जाता है। वह पहले आनेवाले अवसर का लाभ उठाता है।

फंडा यह है कि जिंदगी आपको भरपूर अवसर देती है। उनमें से कुछ अवसर आसान होते हैं तो कुछ मुश्किल। लेकिन यदि हम किसी अवसर को गुजर जाने दें (इस उम्मीद में कि अगला अवसर बेहतर होगा) तो हो सकता है कि वैसा अवसर फिर कभी न मिले। लिहाजा पहला अवसर मिलते ही उसे लपक लें।

क्या आप में है अनसुने को सुनने की कला?

तकरीबन सत्रह सदी पहले चीन में त्साओ नामक राजा हुआ करता था।

उसका एक बेटा था ताई। त्साओ चाहता था कि उसका बेटा सामान्य जीवन जीते हुए जिंदगी के बारे में अच्छी तालीम हासिल करे। यही सोचकर उसने अपने बेटे को पान कु जैसे उत्कृष्ट गुरु के स्कूल में भेजा। जब राजकुमार वहाँ पहुँचा तो गुरु ने उसे मांग-ली नामक जंगल में अकेले जाने के लिए कहा। राजकुमार का काम था कि वह जंगल में निकलनेवाली विविध धनियों को ध्यान से सुने और कम-से-कम एक साल में उसे तमाम तरह की धनियों को सुनने की कला सीख लेनी चाहिए। इसके बाद वह वापस आकर गुरु को अपने अनुभव के बारे में बताए।

राजकुमार ताई के वापस लौटने पर गुरु पान कु ने उससे जंगल में रहने के दौरान सुनी गई विविध धनियों के बारे में पूछा। नहा राजकुमार तुरंत शुरू हो गया और बोला, ‘मैंने कोयल की कूक, पत्तियों की सरसराहट, चिड़ियों का चहचहाना, भौंरों का गुनगुनाना, मधुमक्खियों का भिनभिनाना और हवा का तेज व मंद प्रवाह इत्यादि सब सुना।’ यह सुनकर नाखुश गुरु ने उसे दोबारा जंगल में भेजते हुए कहा कि वह वहाँ पर और भी कुछ सुनने की कोशिश करे। राजकुमार ने जंगल में रुकते हुए और ज्यादा ध्यान लगाकर सुनने की कोशिश की और इस तरह उसे कुछ ऐसी बेहद महीन धुँधली धनियों का भी आभास होने लगा, जो उसने पहले कभी नहीं सुनी थीं।

इससे राजकुमार में कुछ जानने का भाव आया। राजकुमार दोबारा लौटकर आया और उसके गुरु ने उससे पूछा कि इस बार उसने जंगल में और क्या-क्या सुना? अब राजकुमार के जवाब अलग थे। उसने कहा, ‘मैंने फूलों के खिलने, सूरज द्वारा धरती को तपाने और हरी-हरी धास द्वारा सुबह की ओस को पीने जैसी आवाजें सुनीं।’ उसकी बात सुनकर गुरु खुश हुए और बोले, ‘अनसुने को सुनना किसी भी शासक के लिए एक अनिवार्य कला है।’

उन्होंने आगे कहा कि जब राजा लोगों के दिल में छिपी ऐसी भावनाओं की अनुगृंज सुनने लगता है, जिन्हें शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता; लोगों की उन शिकायतों को समझने लगता है, जिन्हें मंत्रियों द्वारा कभी दर्ज नहीं किया जाता और लोगों के ऐसे दुःख व पीड़ा को समझने लगता है, जिसे वे डर या उत्पीड़न के चलते अभिव्यक्त नहीं पर पाते, तभी वह वास्तव में अच्छा राजा साबित होता है।

अनेक संस्थानों में शीर्ष प्रबंधन हमेशा कुछ ऐसे लोगों की मंडली से घिरा रहता है, जो कई बार लीडर के लिए घातक साबित होते हैं। लीडर कई बार ऐसे लोगों के बारे में अँधेरे में रहता है, जो दीमक की तरह कारोबार की बुनियाद को खोखला करते रहते हैं। यही कारण है कि आजकल अनेक कॉरपोरेट संस्थान अपने हरेक कर्मचारी से मिलने के लिए हर तीन महीने या छह महीने में एक टाउन हॉल मीटिंग करने लगे हैं।

इसके अलावा अनेक मैनेजमेंट गुरु कंपनियों के शीर्ष प्रबंधन को एक खास तकनीक अपनाने की सलाह देते हैं, जिसे ‘चलते-फिरते हुए प्रबंधन’ कहा जाता है। इस तकनीक में सीनियर प्रबंधन से यह अपेक्षा की जाती है कि वह शॉप फ्लोर तक एक बार जरूर टहलते हुए जाए और निचले स्तर के कर्मचारियों से बातचीत करते हुए यह जानने की कोशिश करे कि वास्तव में संस्थान के भीतर क्या चल रहा है। पुराने दिनों में राजा अकसर रात में वेश बदलकर अपने राज्य में धूमते हुए यह जानने की कोशिश करता था कि उसकी प्रजा की स्थिति क्या है और वह उसके बारे में क्या सोचती है। आज यह तकनीक टाउन हॉल मीटिंग या चलते-फिरते प्रबंधन में तब्दील हो गई है।

फंडा यह है कि आप वास्तव में सच्चे लीडर तभी बन सकते हैं, जबकि आपके भीतर अन्युने को भी सुनने की काविलियत हो।

तकनीक के बल पर करें प्रकृति का दोहन

जवाहरलाल नेहरू टेक्नोलॉजी यूनिवर्सिटी से इलेक्ट्रॉनिक इंजीनियरिंग में बी.ई. तथा अमेरिका के अलबामा स्थित ट्रॉय स्टेट यूनिवर्सिटी से एम.बी.ए. की डिग्री प्राप्त 30 वर्षीय रघुराम कोंडुभतला एक दिन अपने दोस्त भगवान रेण्टी ज्ञानप्पा के साथ एक मैदान में खड़े होकर सूर्योदय का नजारा ले रहा था। दोनों की नजरें सूरज पर टिकी थीं, जो धीरे-धीरे पूर्व से पश्चिम की ओर जा रहा था। उस वक्त वे एक सोलर पॉवर कंपनी लॉच करने की सोच रहे थे, क्योंकि इसमें उन्हें किसी भी अन्य इंडस्ट्री की तुलना में ज्यादा तेजी से प्रतिफल मिलने की संभावनाएँ नजर आ रही थीं। तभी उनके मन में ख्याल आया कि जैसे उनकी आँखें सूर्य के मुताबिक चल रही हैं, उसी तरह क्या सोलर पैनल भी सूर्य के संग-संग नहीं चल सकते। इसका मतलब था कि अमूमन स्थिर रहनेवाले सोलर पैनल भी सूर्य के संग-संग घूमें। इस तरह वे दोनों सूरज की ट्रैकिंग के ऑन-प्रिड सॉल्यूशन के साथ दो मॉडल—सिंगल एक्सिस व डुअल एक्सिस लेकर आए। सिंगल एक्सिस ट्रैकिंग सिस्टम दिन में सूर्य की गति के हिसाब से पूर्व से पश्चिम की ओर घूमता है, जिसे अमेरिका की सैंडिया नेशनल लैबोरेटरीज से सूर्य की स्थितियों के आँकड़ों के आधार पर तैयार किया गया। डुअल एक्सिस मॉडल सभी तरह के मौसमों में पूरे दिन सूर्य के हिसाब से घूमता है। आमतौर पर सोलर फार्म्स में स्थिर पैनल होते हैं। यह ट्रैकिंग सिस्टम पैनलों को सूर्य के साथ-साथ घूमने में मदद करता है। जहाँ सिंगल एक्सिस ट्रैकिंग सिस्टम से स्थिर पैनलों के मुकाबले 38 प्रतिशत ज्यादा बिजली पैदा होती है, वहीं डुअल एक्सिस ट्रैकिंग सिस्टम 48 प्रतिशत ज्यादा आउटपुट देता है।

इस तकनीक में 5 मेगावॉट की एक सोलर पॉवर यूनिट की स्थापना की लागत तकरीबन 47.5 करोड़ रुपए आती है, जिससे लगभग 80 लाख यूनिट बिजली बनती है। ट्रैकिंग सिस्टम के इस्तेमाल से ऊर्जा के स्रोत यानी सूर्य की ओर पैनलों का संपर्क बढ़ाकर इतनी ही बिजली 38 करोड़ रुपए के निवेश से प्राप्त की जा सकती है।

इस तरह हैदराबाद में एक साल पहले ‘स्मार्ट ट्रैक सोलर सिस्टम्स’ नामक इस कंपनी का जन्म हुआ। इस कंपनी का कारोबार लगभग 2 करोड़ रुपए है और यह धीरे-धीरे अन्य सोलर पॉवर डेवलपर्स को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। इस वक्त यह कंपनी आंध्र प्रदेश में एक 1.25 मेगावाट सोलर प्लांट के ट्रैकिंग प्रोजेक्ट पर काम कर रही है। फिलहाल 20 अन्य डेवलपर्स इस कंपनी का ट्रैकिंग प्रोजेक्ट खरीदने के लिए उनसे बातचीत कर रहे हैं और रघुराम को

भरोसा है कि आगले वित्तीय वर्ष तक उनका कारोबार 10 करोड़ रुपए तक पहुँच जाएगा। किसान भी इस नए कांसेप्ट के बारे में समझते हैं, क्योंकि यदि कोई किसान अपने पंप सेट चलाने के लिए ऑफ-ग्रिड सोलर सिस्टम लगाता है तो उसे अपनी ओर से इसकी सिर्फ 20 प्रतिशत कीमत अदा करनी होगी। सरकार इस पर 30 प्रतिशत सब्सिडी देगी और बाकी 50 प्रतिशत के लिए बैंक 5 प्रतिशत सालाना की दर से ऋण देगा। संक्षेप में कहें तो सूर्य और हवा में प्रकृति-प्रदत्त उपहार हैं। समुचित टेक्नोलॉजी को लागू करते हुए आप इनका अधिकतम इस्तेमाल कर सकते हैं, जिससे न सिर्फ पर्यावरण को प्रदूषित किए बगैर बिजली पैदा कर सकेंगे, बल्कि कॉरपोरेट जगत् में आगे बढ़ने के लिए आप अच्छा-खासा मुनाफा भी कमाएँगे।

फंडा यह है कि प्रकृति के पास इनसान को देने के लिए बहुत कुछ है। अब यह हम पर निर्भर है कि हम कैसे प्रकृति को नुकसान पहुँचाए बगैर उसका अधिकतम दोहन करें।

भावनाएँ किसी भी दौर में बिक सकती हैं

बॉलीवुड गानों की रीमिक्सिंग अब कोई नई बात नहीं है। हम पिछले कुछ समय से खूब रीमिक्स सुन रहे हैं। कई फिल्मों के शीर्षक भी इन बॉलीवुड गीतों से प्रेरित होते हैं। फिल्म ‘दिलवाले दुल्हनिया ले जाएँगे’ का शीर्षक सन् 1974 में आई फिल्म ‘चोर मचाए शोर’ के एक गीत से लिया गया था। फिल्मी गानों से प्रेरित ऐसे कुछ और फिल्म शीर्षकों में ‘बचना ऐ हसीनो’, ‘खोया-खोया चाँद’, ‘जाने तू...या जाने न’, ‘चलते-चलते’ और ताजा-तरीन ‘एक मैं और एक तू’ जैसे नाम शामिल हैं।

हालाँकि बॉलीवुड द्वारा अपने ही गीतों की कॉपी करना अब पुरानी बात हो चुकी है। छोटा परदा अब कुछ अलग तरीके से इस काम को अंजाम दे रहा है। वे किसी गाने के बोल उसके संगीत के साथ उठा रहे हैं और उसे अपनी कहानी में चला रहे हैं। इस तरह वे इस दिशा में एक कदम और आगे बढ़े हैं। उनके सीरियलों के नाम गुजरे जमाने के फिल्मी गीतों से लिये जा रहे हैं। उदाहरण के तौर पर ‘ससुराल गेंदा फूल’ (जो अभी भी टी.आर.पी. चार्ट में अच्छा चल रहा है) का शीर्षक ‘दिल्ली 6’ फिल्म के ए.आर. रहमान द्वारा संगीतबद्ध गीत से उठाया गया है। इसी तरह ‘ये रिश्ता क्या कहलाता है’ शीर्षक एम.एफ. हुसैन द्वारा निर्देशित ‘मीनाक्षी : अ टेल ऑफ 3 सिटीज’ के गीत से लिया गया है। स्टार प्लस के सीरियल ‘रुक जाना नहीं’ का नाम फिल्म ‘इम्तिहान’ के गीत से प्रेरित है। कलर्स चैनल पर प्रसारित ‘न बोले तुम, न मैंने कुछ कहा’ का शीर्षक ‘बातों-बातों में’ के गीत से लिया गया है। यहाँ तक कि नए-नए लाइफ ओके चैनल पर प्रसारित हो रहे ‘तुम देना साथ मेरा’ का नाता ‘जुर्म’ फिल्म के गीत से है। सोनी टी.वी. का सीरियल ‘बड़े अच्छे लागते हैं’ सभी आयु वर्ग के लोगों में समान रूप से लोकप्रिय है। इसके टाइटिल सॉन्ग को श्रेया घोषाल ने आवाज दी है, जिससे ‘बालिका वधू’ की इस जबरदस्त मेलोडी को नया जीवन मिला है। मैं इस तरह के और दसियों नाम गिना सकता हूँ, जहाँ पर धारावाहिकों के नाम इस तरह भावना-प्रधान गीतों पर रखे गए हैं। कहने की जरूरत नहीं कि दर्शकों ने भी इन सीरियलों को खुले दिल से स्वीकारा है। लिहाजा यहाँ पर यह कहना गलत होगा कि टी.वी. प्रोडक्शन में रचनात्मकता पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता और वहाँ पर सिर्फ कॉपी-पेस्ट तकनीक ही अपनाई जा रही है।

छोटे परदे के निर्माता इस बात से भलीभाँति वाकिफ हैं कि मौजूदा दर्शक भावनाएँ तलाश रहा है, जो इस भौतिकवादी दुनिया में उसे नहीं मिल पा रही हैं। हालात और मजबूरियाँ लोगों को एक-दूसरे से दूर रख रही हैं। कई बार

अमिभावक अपने बच्चों के साथ डिनर टेबल पर साथ बैठकर खाना भी नहीं खा पाते, क्योंकि वे ऑफिस से रात को लेट घर पहुँचते हैं। ऐसे में लोग भावनाओं की तलाश में रहते हैं। मैं अपने कुछ ऐसे पत्रकार सहकर्मियों को जानता हूँ, जो आधी रात को घर पहुँचने के बाद इन सीरियलों का पुनः प्रसारण देखते हैं। इससे पता चलता है कि उनके जेहन में कहीं-न-कहीं भावनाओं का ज्वार धुमड़ता रहता है। एडवरटाइजर भी अपने उत्पादों के विज्ञापन में इस तकनीक को अपना रहे हैं।

फंडा यह है कि यदि आपके उत्पाद के साथ भावनाएँ जुड़ी हों तो यह हर दौर में बिक सकता है। दुनिया जितनी अधिक भौतिकवादी चीजों के पीछे भागेगी, भावनाएँ उतनी ज्यादा यहाँ बिकेंगी।

समस्या को हाईलाइट कर बेचें अपना उत्पाद

यदि आप एस्प्रिन बेचना चाहते हैं तो आपको ऐसे ग्राहक चाहिए, जो सिरदर्द से परेशान हों। लेकिन यदि आप सिरदर्द को हाइप देते हुए लोगों को वे तमाम कारण बताएँ, जिनकी वजह से यह समस्या होती है तो पूरी संभावना है कि जब कभी किसी शख्स को किसी भी कारण से सिरदर्द होगा तो वह एस्प्रिन लेने की ही कोशिश करेगा।

इन तमाम वर्षों में किसी भी उत्पाद की मार्केटिंग इस तरह की जाती रही है कि वह फलाँ-फलाँ समस्या को दूर करने में किस हद तक सक्षम है। लेकिन अब यह सोच बदलने लगी है। अब मार्केटिंग का नया गुर यह है कि समस्या को हाईलाइट करते हुए उसे इस कदर हाइप दें कि ग्राहक के पास आपके द्वारा पेश समाधान को अंगीकार करने के अलावा कोई विकल्प न रह जाए। नया मार्केटिंग मंत्र कहता है कि ग्राहकों को समाधान की खोज करने दें। इससे उनमें जीत का भाव आएगा, क्योंकि उन्होंने समाधान तलाशा है। इसका नतीजा यह होता है कि आपका उत्पाद बिकने लगता है।

हालिया दशकों में सेल्स रिप्रेजेंटेटिव्स ग्राहक की जरूरतों का पता लगाने और उन्हें ऐसे ‘समाधान’ बेचने के आदी हो गए, जिनमें अमूमन उत्पाद व सेवाओं का जटिल संयोजन होता। यह नुस्खा कारगर रहा, क्योंकि ग्राहक नहीं जानते थे कि वे अपनी समस्याओं को किस तरह सुलझा सकते हैं। हालाँकि कई बार वे अच्छी तरह समझते थे कि उनकी समस्याएँ क्या हैं। अब हरेक ग्राहक अपना समाधान खुद तय कर रहा है। यही कारण है कि समस्या को इस हद तक हाइप देना बेहतर है कि उनके समक्ष आनेवाले किसी भी समाधान को वे हाथोंहाथ लें।

रिवर्स ऑस्मोसिस (आर.ओ), अल्ट्रा वॉयलेट (यू.वी.) और टेस्ट हाइटनर (टी.एच.) कुछ ऐसे नाम हैं, जिन्हें सिर्फ वाटर प्यूरीफायर कंपनियों और उनके उत्पादों से जोड़कर देखा जाता है। हरेक कंपनी द्वारा कुछ नया ईंजाद करने या समाधानों को हाईलाइट करने, जो वे शुद्ध पेयजल की चाहत रखनेवाली प्यासी आबादी को मुहैया करा सकते हैं, के साथ तकनीकी शब्दावली-युक्त ये हाई वैल्यू जुमले उनके पक्ष में कारगर साबित होते नहीं लगते।

यूरेका फोर्ब्स ने खुद को ‘पानी का डॉक्टर’ के रूप में ढालने का फैसला किया और ब्रांड के तौर पर अपने आपको इस तरह आगे बढ़ाया, जो आपके बच्चों के विकास में मददगार साबित हो सकता है। इसी समय वाटर प्यूरीफायर ब्रांड एक्वागार्ड के निर्माताओं ने आमिर खान के टी.वी. शो ‘सत्यमेव जयते’ को

अपनी नई ब्रांड पोजिशनिंग लॉच करने के लिए चुना, जिसके एक एपिसोड में पानी की किल्लत और जलीय अशुद्धता का मुद्दा प्रमुखता से उठाया गया था।

‘हार्वर्ड बिजनेस रिव्यू’ कहता है कि आधुनिक ग्राहक अपनी समस्याओं के बारे में गहरी समझ और एक बेहतर प्रस्तावित समाधान के साथ आ रहे हैं। इससे कई बार उनसे सेल्स संबंधी बातचीत संतुष्टिदायक वार्तालापों में बदल जाती है। कंपनी फिलहाल ‘वाटर प्लस’ कांसेप्ट पर काम कर रही है। इसका मतलब है कि शुद्ध पेयजल देने के अलावा यह कुछ और भी देना चाहती है। पारंपरिक तौर पर वाटर प्यूरीफायर्स सिर्फ शुद्ध पेयजल मुहैया कराने पर ध्यान देते हैं। कंपनी इसमें कुछ और भी जोड़ने की कोशिश में लगी है, जैसे कि स्वाद या कहें कि पानी का नियंत्रित तापमान।

स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के एक अध्ययन में कहा गया कि खरीदारों का बरताव अलग-अलग होता है, लिहाजा आप उन्हें एक कस्टमर प्रोफाइल में फिट करते हुए यह नहीं कह सकते कि तमाम ग्राहक उसी तरह बरताव करेंगे। यही कारण है कि कुछ कंपनियाँ बतौर विक्रेता उन तक पहुँचने के अपने तौर-तरीकों में लचीलापन ला रही हैं। वहीं कुछ कंपनियाँ समस्या को हाइप देते हुए ग्राहकों को एक सार्वभौमिक समाधान स्वीकार करने पर मजबूर कर रही हैं।

फंडा यह है कि ग्राहकों के लिए विशिष्ट समाधान तैयार करने के बजाय समस्याओं का विशिष्टीकरण करें और इन्हें हाइप देते हुए अपने उत्पाद की बिक्री बढ़ाएँ।

ग्राहक के व्यवहार को समझ बढ़ाएँ कारोबार

यह यूँ तो एक इंटरनेट लतीफा या स्टोरी है, लेकिन इसमें इस बात के गहरे अर्थ छिपे हैं कि आप इस विशाल दुनिया में कैसे ग्राहक के व्यवहार को समझकर अपने उत्पाद को सफल बना सकते हैं। यह स्टोरी कुछ इस तरह है—इटली के रोम शहर में एक सड़क किनारे दो भिखारी आजू-बाजू में बैठे थे। एक भिखारी ने अपने आगे 'क्रॉस' (ईसाई धर्म का प्रतीक) रख रखा था। दूसरे भिखारी के पास 'स्टार ऑफ डेविड' (यहूदी धर्म का प्रतीक) था। वहाँ से गुजरनेवाले लोग दोनों भिखारियों को देखते, लेकिन सिर्फ 'क्रॉस' लेकर बैठे भिखारी की टोपी में सिक्के वगैरह डालकर आगे बढ़ जाते।

कुछ समय बाद पोप का वहाँ से गुजरना हुआ। वे यह देखकर ठिठक गए कि लोग 'क्रॉस' रखनेवाले भिखारी को तो पैसा दे रहे हैं, लेकिन 'स्टार ऑफ डेविड' वाले भिखारी को कोई कुछ नहीं दे रहा है।

पोप 'स्टार ऑफ डेविड' वाले भिखारी के पास पहुँचे और बोले, 'बेटे, क्या तुम नहीं समझते कि यह एक कैथोलिक देश है और यह शहर कैथोलिसिज्म का गढ़ है? यदि तुम अपने सामने 'स्टार ऑफ डेविड' लेकर बैठे रहोगे तो आने-जानेवाले लोग तुम्हें कुछ नहीं देंगे। खासकर तब जबकि तुम एक ऐसे भिखारी के बाजू में बैठे हो, जिसने क्रॉस पकड़ रखा है। हो सकता है कि तुमसे चिढ़कर वे उसे और भी ज्यादा पैसे दें।' 'स्टार ऑफ डेविड' थामनेवाला भिखारी पोप की बात सुनकर मुसकराया और मुड़कर क्रॉस वाले भिखारी से बोला, 'मोइशे, (यहूदी नाम) देखो, कौन गोल्डस्टीन बंधुओं को मार्केटिंग के बारे में सिखा रहा है!'

अब सन् 1997 के दौर में चलते हैं। उस वक्त ब्रिटेनिया मार्केट में एक टैगलाइन लेकर आया था—'स्वस्थ खाओ, तन-मन जगाओ।' यह टैगलाइन ब्रिटेनिया के तत्कालीन एम.डी. व सी.ई.ओ. सुनील अलघ के दिमाग की उपज थी। दरअसल उन्होंने पहले इस टैगलाइन को 'ईट हैल्दी एंड लिव बेटर' के रूप में तैयार किया था।

उन्होंने कुछ खास लोगों को बुलाकर अपनी यह टैगलाइन सुनाई। इसे सुनकर उन लोगों ने 'लिविंग' शब्द पर विरोध जताया। इन लोगों का कहना था कि 'लिविंग' शब्द ज्यादा बनावटी है और लोग इसे शरीर से जोड़कर देखते हैं; जबकि 'थिंकिंग' को दिमाग से जोड़कर देखा जाता है।

जिस तरह हॉलिंक्स ने दक्षिण भारत जैसे दूध की निम्न आपूर्तिवाले बाजार में दूध की जगह ले ली, उसी तर्ज पर ब्रिटेनिया ने 'एनलीन' नामक एक ब्रांड नेम

के साथ पूर्वी भारत में एक दुग्ध-आधारित पेय बाजार में उतारा। इस उत्पाद का मक्सद ऑस्ट्रियोपोरोसिस से पीडित महिलाओं को आकर्षित करना था। लेकिन भारतीय महिलाएँ ज्यादातर डायबिटीज और हृदय संबंधी बीमारियों के बारे में जानती ही थीं और ऑस्ट्रियोपोरोसिस के बारे में जागरूक नहीं थीं। लिहाजा यह उत्पाद टेस्ट मार्केट लेवल से आगे नहीं बढ़ सका और इसे वापस बुलाना पड़ा। बाद में इसकी जगह ‘न्यूट्रीचॉइस’ नामक ब्रांड ने ले ली।

इसके बाद इस तरह की बात आई कि मधुमेह रोगियों को ध्यान में रखते हुए कंपनी को क्या शुगर-फ्री उत्पाद बनाने चाहिए? बाद में उन्हें बाजार में शुगर-फ्री उत्पादों की भरमार देखते हुए लगा कि ग्राहक इनसे ऊब चुके हैं। कंपनी ने और गहराई से शोध किया, तब जाकर उन्हें पता लगा कि ग्राहक ऐसे उत्पाद चाहते हैं, जो उनकी शर्करा का स्तर स्थिर रखें। इस तरह कंपनी ने रागी व जई से बने उत्पादों को बाजार में उतारा और इन्हें छोटी-छोटी पैकिंग में पेश किया, ताकि ग्राहकों को इन्हें घर ले जाने में आसानी हो।

ऐसे में कोई आश्वर्य नहीं कि ब्रिटेनिया की बिक्री का 80 प्रतिशत हिस्सा बिस्किटों से आता है, क्योंकि यह कंपनी बाजार में मासिक आधार पर ग्राहकों के व्यवहार को समझने में अपनी काफी ऊर्जा खपाती है।

फंडा यह है कि आपके उत्पाद की सफलता पूरी तरह इस पर निर्भर करती है कि आप कितने बेहतर तरीके से ग्राहकों के मन के भीतर झाँकते हुए उनकी सोच, उनके दर्द, उनकी खुशी और अवृत्त माँगों को समझ पाते हैं। यदि आप ऐसा करते हैं तो बाजार में आप और आपके उत्पाद अपने आप शिखर पर पहुँच जाएँगे।

बिक्री बढ़ाने में मददगार होते हैं आकर्षक ऑकड़े

रजनीकांत की फिल्म ‘शिवाजी’ का एक संवाद है—‘अगर आपको मरने का दिन मालूम पड़ जाएगा तो जीने के दिन नरक बन जाएँगे।’ लेकिन रजनीकांत ने अब तक किसी फिल्म में नवजात के जन्म की तारीखों के बारे में कोई संवाद नहीं बोला है।

हालाँकि इस सदी के शुरू होने के बाद पिछले बारह वर्षों से युवा अभिभावकों में ऑकड़ों के प्रति खास रुझान देखा जा रहा है। कई अभिभावक चाहते हैं कि उनके नवजात शिशु एक निर्धारित तिथि को इस दुनिया में आएँ।

नियोजित गर्भधान के इस क्रम में उनकी यही चाहत रही कि उनका बच्चा 01/01/01 को जन्म ले। अगले साल के लिए यह ऑकड़ा 02/02/02 हो गया और इस तरह साल के हिसाब से यह ऑकड़ा भी आगे खिसकता रहा। और आगे उनके पास अपने गर्भस्थ शिशु के लिए ऐसी बेमिसाल यादगार जन्मतिथि पाने का आखिरी मौका था—12/12/12। जल्द ही माता-पिता बनने जा रहे कई अभिभावक इस कतार में लग गए। दिसंबर 12, 2012 के आने से पहले ही कई जोड़ों ने नवजातों के लिए यह तिथि तय करने की तैयारियाँ शुरू कर दी हैं। डॉक्टरों का भी मानना है कि पिछले कुछ वर्षों से अभिभावकों में इस तरह की दोहरावपूर्ण संख्यावाली जन्मतिथि के प्रति क्रेज बढ़ा है। ‘मुहूर्त’ शिशु पाने (या विशिष्ट तारीखों पर योजनाबद्ध तरीके से सीजेरियन के जरिए बच्चे को इस दुनिया में लाने) का यह चलन अभिभावकों में बढ़ रहा है। अब जरा देखें कि इस दीपावली पर क्या हुआ। हर साल की तरह इस बार भी सबके पास दीपावली पर शुभकामनाओं के एस.एम.एस. आए होंगे। लेकिन कई लोगों को एक ऐसा भी एस.एम.एस. मिला, जिसने सबसे ज्यादा ध्यान खींचा। वास्तव में इस एस.एम.एस. को देखकर लोगों की नजर एकबारगी ठिठक गई और उन्होंने इसमें दिए गए तमाम ऑकड़ों को बड़े गौर से पढ़ा। इस एस.एम.एस. में ज्यादा कुछ नहीं था। बस, सन् 2023 तक यानी अगले 11 साल में पड़नेवाली दीपावली की तारीखें दी गई थीं।

उसमें वर्ष 2013 से शुरुआत करते हुए दीपावली की तारीखें कुछ यूँ दर्ज थीं—03.11.2013; 23.10.2014; 11.11.2015; 30.10.2016; 19.10.2017; 07.11.2018; 27.10.2019; 14.11.2020; 04.11.2021; 24.10.2022 तथा 12.11.2023।

विज्ञानियों व शोधकर्ताओं का कहना है कि इसके पीछे कोई तर्कसंगत कारण नहीं है कि आखिर क्यों आँकड़े हमेशा लोगों को आकर्षित करते हैं। उनके मुताबिक, यह इनसान को सचेत व चिंतनशील रखने की थोड़ी सी मानसिक यात्रा है।

वहाँ कुछ विज्ञानियों का यह भी कहना है कि इनसानी मस्तिष्क में बड़े व अनूठे आँकड़ों के प्रति आकर्षण होता है। वे इसके लिए 12 अक्टूबर, 2012 को खोजे गए हमारे नए पड़ोसी का उदाहरण देते हैं। एक चट्टानी प्रह, जिसका आकार तकरीबन हमारे प्रह जितना ही होगा, अल्फा सेंचुरी बी की परिक्रमा करते पाया गया।

डबल-स्टार अल्फा-सेंचुरी सिस्टम हमारे सौरमंडल का निकटतम साथी है, जो हमारे सूर्य से तकरीबन 4.3 प्रकाश वर्ष दूर है। आँकड़ों पर आधारित सबसे पुराना सेल्स मॉडल बाटा ने ईंजाद किया, जो हमेशा अपने जूते-चप्पलों की बिक्री के लिए इन आँकड़ों के मनोविज्ञान का इस्तेमाल करता रहा है। बाटा ने शुरुआत में अपने उत्पाद रूपए से 5 पैसे कम में बेचने का फॉर्मूला अपनाया, ताकि यह सस्ता लगे।

जब पाँच पैसे चलन से बाहर हो गए तो यह नजदीकी सैकड़ा संख्या से 1 रुपए कम दाम के फॉर्मूले को लेकर आ गया—मसलन 400 या 500 की जगह क्रमशः 399 या 499 रुपए। यह कोई राज की बात नहीं है कि दुनिया भर में सड़क परिवहन कार्यालय गाड़ियों के लिए विशिष्ट पंजीकरण संख्या मुहैया कराने के एवज में लाखों रुपए कमा रहे हैं।

फंडा यह है कि अनूठे आँकड़ों का अपना विशिष्ट बाजार होता है। अब उद्यमी इन्हें कितनी अच्छी तरह भुना सकते हैं, यह उनकी क्रिएटिविटी पर निर्भर करता है।

कम विकल्पों के साथ ज्यादा बिक्री

दिसंबर 2010 में 25 वर्षीय युवा एकजीक्यूटिव डेविड गोम्स एक दिन अपने परिवार के साथ हाइपर मार्केट में पहुँचा और तकरीबन 700 डॉलर की खरीदारी की। घर लौटने पर परिवार के सदस्यों के बीच इसको लेकर काफी बहस हुई कि उस मेंगा स्टोर में उसी कीमत पर उत्पादों के बेहतर विकल्प भी उपलब्ध थे, लेकिन उन्होंने डिस्प्ले में रखे सारे आइटमों पर ध्यान ही नहीं दिया।

दो घंटे बाद उस मेंगा स्टोर की रिसर्च टीम ने डेविड गोम्स को फोन किया और उसके परिजनों के साथ उनके स्टोर से जुड़े शॉपिंग अनुभव के बारे में बात करने के लिए वक्त माँगा।

जब मेंगा स्टोरवाले उनसे बातचीत के लिए घर आए तो वे अपने साथ डेविड के घरवालों के तमाम ऑँकड़े लेकर आए थे। गोम्स परिवार ने अपने द्वारा खरीदे गए किसी भी आइटम पर 2.5 सेकंड से ज्यादा वक्त खर्च नहीं किया था, हालाँकि इन सामानों के बहाँ कम-से-कम 16 से 17 विकल्प उपलब्ध थे। इन तमाम विकल्पों के बावजूद गोम्स परिवार ने विभिन्न ब्रांडों से जुड़े उत्पादों एवं उनकी कीमतों के बारे में विश्लेषण ही नहीं किया और जो चीज उन्हें पहली नजर में पसंद आई, वह खरीद ली। टीम इस रिसर्च के साथ वापस लौट गई कि गोम्स परिवार ज्यादा पैसा खर्च कर सकता था; लेकिन अलमारी के खानों में रखे बहुत सारे विकल्पों ने उन लोगों को भ्रमित कर दिया।

दिसंबर 2011 में इस परिवार के साथ फिर इसी तरह की रिसर्च की गई। मंदी के चलते गोम्स परिवार इस बार आर्थिक दबाव में था; फिर भी उसके सदस्यों ने मिलकर 1,200 डॉलर की खरीदारी की। इसके बाद लिये गए इंटरव्यू में वे सन् 2010 के मुकाबले कहीं ज्यादा खुश नजर आए।

सन् 2010 व 2011 के बीच इस स्टोर ने अलमारी में प्रदर्शित होनेवाले हरेक आइटम के विकल्पों की संख्या को व्यवस्थित ढंग से घटाते हुए खरीदारों के लिए विकल्प चुनना आसान बना दिया। वॉल मार्ट ने क्रिसमस के लिए मोमबत्तियों के विकल्प घटा दिए, जिससे उसकी बिक्री 65 प्रतिशत तक बढ़ गई। प्रॉक्टर एंड गैंबल ने स्किन केयर सोप के विकल्पों में एक-तिहाई और डिटर्जेंट्स में 20 प्रतिशत तक कमी कर दी, जिससे इनकी बिक्री क्रमशः 40 व 45 प्रतिशत बढ़ गई।

प्राहकों के बरताव का यह पैटर्न अलग-अलग स्टोर व शहर के हिसाब से अलग-अलग हो सकता है। मिसाल के तौर पर, युवा खरीदारों में किसी एक

ब्रांड के प्रति समर्पित होने के बजाय एक ही कैटेगरी में कई तरह के उत्पाद खरीदने की प्रवृत्ति होती है। जैसे कि कोई खरीदार अपने पूरे महीने के इस्तेमाल के लिए चार अलग-अलग तरह के नहाने के साबुन खरीदता है। लेकिन जब उसी उपभोक्ता को चार साबुनों का एक पैकेज 12 प्रतिशत कम कीमत के ऑफर के साथ दिया जाता है तो वह उसी ब्रांड पर टिक सकता है।

युवाओं में खरीदारी की इस प्रवृत्ति को देखते हुए वॉल मार्ट जैसे कई रिटेलर अपने उत्पादों की तीन या चार इकाइयों की पैकेजिंग लेकर आए हैं, जिनकी कीमतें 12 से 18 प्रतिशत तक कम हैं।

हालाँकि खरीदारी करते समय इस तरह की स्कीम खरीदारों को फायदेमंद लगती है, लेकिन पूरे महीने एक जैसी चीज इस्तेमाल करने के बाद कहीं-न-कहीं वे इससे ऊब भी जाते हैं। यदि उन्होंने एक-दो रूपए ज्यादा चुकाए होते तो वे महीने में चार अलग-अलग तरह के साबुन से नहा सकते थे।

टेस्को हर महीने वैश्विक स्तर पर इस तरह के 4 अरब डाटा का विश्लेषण करता है कि खरीदार ने क्या खरीदा? क्या इसकी बिक्री पूरी कीमत पर हुई? यह ब्रांडेड उत्पाद था या कोई लोकल लेबल? क्या इसे खुद के लिए खरीदा गया या फिर घर के किसी और सदस्य के लिए इत्यादि-इत्यादि। इसके बाद वह इलाके में आबादी की स्थिति के हिसाब से खरीदारों की आदतों का वर्गीकरण करता है। इस तरह की खोज का यही नतीजा है कि कम विकल्प होने पर कन्फ्यूजन कम होता है और बिक्री बढ़ती है। यह दीपावली में शॉपिंग के लिहाज से अहम सबक हो सकता है।

फंडा यह है कि यदि आप अपने स्टोर के शो-केस में कम विकल्प देते हुए उत्पाद की गुणवत्ता पर फोकस करते हैं तो ग्राहक आपके यहाँ से ज्यादा सामान खरीदेगा।

कमजोरी की पहचान कर सेवा में सुधार लाएँ

लगभग दो माह पहले बैंगलुरु में रहनेवाले मेरे एक चचेरे भाई का नौ साल का बेटा मेरे पास मुंबई आया। वह पहली बार अकेले आया था। उसने आते ही मुझसे मुंबई घूमने की बात कर दी। मैंने हामी भरी और बात आई-गई हो गई। वह पूरी रात मुझसे बतियाते हुए अपने शहर की हाउसिंग सोसाइटी समेट वहाँ की कारों पर बात करता रहा। उसके पिता ‘सादा जीवन उच्च विचार’ के सिद्धांत को मानते हैं। उनके पास एक सेंट्रो कार हैं, जो बैंगलुरु जैसे भीड़-भाड़वाले शहर के लिहाज से उपयुक्त है।

मैं उसे अगले दिन घुमाने ले जाने का प्लान बना ही रहा था कि अचानक उसने प्रतिष्ठित कार कंपनियों के मॉडलों की चर्चा शुरू कर दी। वह न सिर्फ रोल्स रॉयस, बेंट्ले, फेरारी, लैंबोर्गिनी, मेबैक, लेक्सस, इंफिनिटी, एक्यूरा, ऑडी, कैडिलॉक, वोल्वो, बी.एम.डब्ल्यू., स्कोडा आदि के आसानी से नाम ले रहा था, बल्कि उनके तकनीकी पहलुओं के बारे में भी विस्तार से बता रहा था। मुझे आश्चर्य तब हुआ जब उसने स्वीडिश कार कंपनी की साबएबी कार की चर्चा की। मैं हैरत में था कि इतना छोटा बच्चा आखिर इन महँगी और प्रतिष्ठित कारों के बारे में कैसे जानता है?

हालाँकि इस बातचीत ने मुझे अगले दिन का प्लान बनाने में मदद कर दी थी। अगले दिन हम मुंबई के सभी कार शो-रूम घूम रहे थे। हम जहाँ भी जाते, वह सेल्समैन से कार के मेक से लेकर अन्य पहलुओं के बारे में प्रश्नों की झड़ी लगा देता। कई बार तो सेल्समैन को अपने बॉस को बुलाना पड़ा, क्योंकि सही जवाब उसे मालूम नहीं होता था। मसलन उसने ऑडी के शो-रूम में कहा कि उसके टी.टी. मॉडल का आईपॉड इंटीग्रेशन खराब है। ट्रैक 1 के बाद न तो दूसरी प्लेलिस्ट आती है और न ही किसी गाने या कलाकार के बारे में कोई जानकारी। उसके बापस जाने के बाद मैंने अपने एक उद्यमी मित्र से इसकी चर्चा की तो उसने बताया कि आजकल 10 से 12 साल के बच्चों के लिए महानगरों या बड़े शहरों में कार के शो-रूम के टूर कराए जा रहे हैं, ताकि बच्चे विंडो शॉपिंग करते हुए नए-से-नए मॉडल के बारे में जानकारी हासिल कर सकें। इससे कारों की बिक्री बढ़ाने में मदद मिलती है।

उसके कुछ ही दिन बाद पितृपक्ष के दिनों में अमेरिका से मेरे अंकल आए। पिछली बार जब वह भारत आए थे तो युवाओं के बीच स्मार्टफोन के बढ़ते प्रयोग से खासे चिढ़े-चिढ़े-से लग रहे थे। यहाँ यह भूलना नहीं चाहिए कि न्यूयॉर्क जैसा शहर दुनिया के उन शहरों में है, जहाँ अधिसंख्य लोग स्मार्टफोन

का इस्तेमाल करते हैं। लेकिन जब वे इस बार आए तो मैं आश्वर्यचकित था। वह धड़ल्ले से स्मार्टफोन का इस्तेमाल कर रहे थे।

अचानक आए इस बदलाव पर जिज्ञासा प्रकट करने पर उन्होंने बताया कि न्यूयॉर्क में वृद्ध जनों के लिए हर महीने ऐसे सेमिनार आयोजित किए जाते हैं, जो उन्हें आधुनिक तकनीक से रु-बरु कराएँ। एक ऐसे ही सेमिनार को अटैंड करने के बाद वे स्मार्टफोन का धड़ल्ले से इस्तेमाल करना सीख गए थे। वहाँ उन्हें युवाओं ने पूरे धेरे के साथ स्मार्टफोन के प्रयोग और उससे जुड़ी बारीकियों से अवगत कराया था। उन्होंने बताया कि इस सेमिनार में शामिल होनेवाले 70 प्रतिशत लोगों ने कुछ ही दिन बाद स्मार्टफोन खरीद लिया था। यानी विभिन्न कंपनियों को हर 100 वृद्ध जनों में से 70 लोग बतौर नए ग्राहक मिल गए थे।

फंडा यह है कि अगर आप कमजोरी की पहचान करने में सफल रहते हैं तो संबंधित ग्राहक वर्ग में अपनी बिक्री बढ़ाने में ज़रूर कामयाब हो जाएँगे।

ग्राहक की जरूरतें समझ बढ़ाएं बिक्री

आखिर आप अपने ग्राहक को कितना जानते हैं? मसलन, कितने लोग शॉवर के नीचे ब्रश करते हैं? (जवाब—आम उपभोक्ता आबादी का 4 प्रतिशत।) कितने किशोर वय लड़के-लड़कियाँ कॉलेज में पहले दिन एक डिब्बे में अनाज लेकर आते हैं, इसे एक कटोरे में डाल बैठकर फाँकने लगते हैं? (जवाब—प्रथम वर्ष के 37 प्रतिशत विद्यार्थी, जिन्हें ऐसा करने से घर से नजदीकी का अहसास होता है।) क्यों ज्यादातर महिलाएं किसी मॉल में पहले टॉयलेट को नजरअंदाज कर दूसरे की ओर बढ़ जाती हैं? (जवाब—ज्यादातर महिलाएं मानती हैं कि दूसरी सीट ज्यादा साफ होगी। विडंबना यह है कि इसके चलते पहला टॉयलेट तुलनात्मक रूप से अछूता रहता है।)

आपको ये बेतुके सवाल और निरर्थक जवाब लग सकते हैं, लेकिन ऐसा है नहीं। यदि आप टूथपेस्ट, ब्रेकफास्ट फूड्स या कीटाणुनाशक लिकिंड आदि बेचने के कारोबार से जुड़े हैं तो आपके लिए ये बड़े प्रासंगिक सवाल और दिलचस्प जवाब हो सकते हैं। ये आइटम्स पर्सनल केयर प्रोडक्ट्स का हिस्सा हैं, जिसका दुनिया भर में कुल कारोबार 510 अरब डॉलर का है। इस तरह की छोटी-छोटी जानकारी आपको बढ़ा दिला सकती है।

मार्टिन लिंडस्टॉर्म एक एड-मेकर हैं, जो अपना ज्यादातर समय ग्राहकों के घरों में बिताते हैं। इसकी शुरुआत कुछ साल पहले हुई, जब फिलीपींस में उनसे एक बीमार कॉफी ब्रांड को उबारने में मदद के लिए कहा गया। उस क्षेत्र का बड़ा कॉफी निर्माता वर्षों से बरसात के मौसम में एक एडवरटाइजिंग कैंपेन चलाता आ रहा था। यह पारंपरिक तौर पर जश्न का समय होता है और यदि कोई कॉफी ब्रांड इसे भुना सके, तो वह जमकर नोट छाप सकता है। कॉफी कंपनी ने टेलीविजन पर एक महँगा विज्ञापन अभियान चलाया, जिसमें कुछ लोग हँसते हुए अपने घरों में बैठकर कॉफी का लुत्फ उठा रहे हैं, जबकि छत पर बारिश की तेज बूँदें पड़ रही हैं। लेकिन यह आइडिया बुरी तरह फ्लॉप रहा। कॉफी की बिक्री गिर गई और किसी को समझ नहीं आया कि ऐसा क्यों हुआ। इसका कारण तलाशने के लिए मार्टिन मनीला पहुँचे।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने कंपनी के अधिकारियों से पहले यही कहा कि वे स्थानीय लोगों के साथ वक्त गुजारना चाहते हैं। अगले दस दिनों तक वह वहाँ के पाँच अलग-अलग परिवारों के साथ रहे। उन्होंने उनके साथ बातचीत की, खाना खाया और हाँ, खूब कॉफी पी। उनका एजेंडा बरसात के मौसम के स्थानीय मनोविज्ञान को समझना था। एक रात जब बारिश की बूँदें टीन की छत पर

गिर रही थीं तो उन्हें अहसास हुआ कि विज्ञापन में पेश बारिश की ध्वनि इससे मेल नहीं खाती। विज्ञापन में बारिश की ध्वनि को स्टॉक साउंड्स से पैदा किया गया था। चूँकि विज्ञापन में पेश ध्वनि सही नहीं थी, लिहाजा यह लोगों की भावनाओं के तार झंकृत नहीं कर सकी।

मार्टिन ने तुरंत छत पर गिरती बारिश की बूँदों की उस ध्वनि को रिकॉर्ड कर लिया और ई-मेल के जरिए इसे प्रोडक्शन कंपनी को भेज दिया। इसके बाद इस विज्ञापन को नए सिरे से तैयार कर दोबारा पेश किया गया, जिसने स्थानीय लोगों को भावुक कर दिया। वास्तव में, इस भावनात्मक पहली में ध्वनि का कारक गायब था। उसके बाद बारिश के सीजन में कॉफी की बिक्री 19 प्रतिशत तक बढ़ गई।

फंडा यह है कि आप अपने ग्राहकों को जितना करीब से जानते हैं, उतनी ही तेजी से अपने उत्पाद उन्हें बेच सकते हैं। यदि आप पैसा कमाना चाहते हैं तो अपने ग्राहकों के साथ कुछ वक्त बिताते हुए उनकी जरूरतों के बारे में जानें।

खाद्य कारोबार में छाई हैं क्षेत्रीय कंपनियाँ

बचपन में हमारा गरमियों में किसी रिश्तेदार के यहाँ जाना इस आधार पर तय होता था कि उनके यहाँ फ्रिज है या नहीं! मेरी ज्यादातर छुट्टियाँ पश्चिम में मुंबई और दक्षिण भारत में तमिलनाडु व आंध्र प्रदेश में रहनेवाले रिश्तेदारों के यहाँ ही बीतती थीं। कभी-कभार तो मेरे माता-पिता मेरी ट्रिप को राउंड टूर की तरह प्लान करते थे, जहाँ पर मैं 10-15 दिन हरेक रिश्तेदार के यहाँ रुकते हुए छुट्टियाँ खत्म होते-होते वापस नागपुर लौट आता था। मेरी सिर्फ एक ही फरमाइश होती थी कि मैं जहाँ भी जा रहा हूँ, वहाँ फ्रिज होना चाहिए, जिसके ठंडे पानी से मैं अपना गला तर कर सकूँ।

मुंबई में मेरे रिश्तेदार के यहाँ गोदरेज का फ्रिज था, हैदराबादी रिश्तेदार के यहाँ ऑल्विन का और चेन्नई में केल्विनेटर का। इसके बारे में पूछने पर मेरे अंकल ने बताया कि ग्राहक हमेशा ऐसे उत्पादों पर ज्यादा भरोसा करते हैं, जो उनके घर के आस-पास स्थित किसी जगह पर निर्मित होते हों। ऐसा इसलिए कि यदि उत्पाद में कोई गड़बड़ी आ जाए तो स्पेयर पार्ट्स के लिए कंपनी डीलर या ग्राहक को कोई परेशानी न हो। किसी दूर-दराज के निर्माता के बनिस्बत आसपास के निर्माता पर आपको ज्यादा भरोसा होता है।

आज 40 साल बाद भी यह प्रवृत्ति नहीं बदलती है। भारत में आज भी आसपास की जगहों पर निर्मित उत्पादों को ज्यादा खरीदा जाता है। जरा इन कंपनियों के आँकड़ों पर नजर दौड़ाएँ, जो शायद ही कभी राष्ट्रीय टेलीविजन पर नजर आती हैं। दक्षिण भारत में खाद्य तेलों के 30 प्रतिशत बाजार पर कल्लेश्वरी (जो ‘गोल्ड विंटर रिफाइंड तेल’ बनाती है), एस.बी.एस., ए.पी. कोऑपरेटिव ऑयल, एस.के. ऑयल मिल्स जैसी कंपनियों का कब्जा है। लेकिन यदि आप उत्तर में जाएँ तो वहाँ बाबाजी उद्योग रिफाइंड ऑयल और कानपुर खाद्य तेल जैसे उत्पाद सबसे ज्यादा बिकते हैं। आंध्र प्रदेश के गुंटूर में स्थित भारती सोप्स की वहाँ के डिटर्जेंट मार्केट में 32 प्रतिशत हिस्सेदारी है। वे ‘ट्रिपल एक्स’, ‘ब्लू डायमंड’ व ‘ग्रीन डायमंड’ जैसे कपड़े धोने के साबुन बनाते हैं। ‘ट्रिपल एक्स’ ब्रांड पर खासकर आंध्र के तेलंगाना इलाके में रहनेवाले ग्राहकों को काफी भरोसा है, क्योंकि यह उस इलाके में उपलब्ध खारे पानी में कपड़े धोने के लिहाज से मुक्तीद है। इसी तरह पूरब में साज इंडस्ट्रीज के ‘बिस्क फॉर्म बिस्किट्स’ काफी लोकप्रिय हैं। इस ब्रांड की पूर्वी भारत के 28 प्रतिशत बिस्किट बाजार पर पकड़ है। ये आंचलिक ब्रांड्स बाजार में जबरदस्त विज्ञापन की वजह से लोकप्रिय नहीं हैं, बल्कि इसलिए हैं, क्योंकि वे स्थानीय लोगों की

प्राथमिकताओं और पसंद के हिसाब से उत्पाद निर्मित करने के अलावा स्थानीय मार्केटिंग तकनीक अपनाते हैं और आपूर्ति शृंखला को हमेशा दुरस्त रखते हैं। वास्तव में देखा जाए तो खाद्य तेल, नमकीन या चटपटे स्नैक्स, डिटर्जेंट्स, चाय व कॉफी इत्यादि के बाजारों में अमूमन स्थानीय खिलाड़ियों का प्रभुत्व होता है। हालाँकि इन तमाम बाजारों में राष्ट्रीय कंपनियों के उत्पाद भी मौजूद होते हैं। भारत का हरेक राज्य यूरोपीय महाद्वीप के किसी देश की तरह है और हर राज्य की न केवल अपनी अलग भाषा, संस्कृति व पहनावा है, वरन् उनकी खान-पान की आदतें भी अलग हैं। यही बात स्थानीय कारोबारियों को मजबूती देती है, क्योंकि वे बाजार की जरूरतों को बेहतर ढंग से समझते हैं।

फंडा यह है कि यदि आप खाद्य कारोबार में हैं तो बेहतर यही है कि किसी एक अंचल में अच्छी पकड़ बनाने के बाद ही दूसरे अंचल की ओर कदम बढ़ाएँ। और दूसरे अंचल की ओर बढ़ते वक्त मैकड़ॉनल्ड की तरह वहाँ की जरूरतों के हिसाब से खाद्य पदार्थों का जायका बदलने की नीति अपनाएँ।

बदल रहे हैं अनुलाभ देने के तौर-तरीके

अनुषा श्रीधर ने दो साल पहले डेलॉइट कंपनी को जॉइन किया था।

लगभग उसी समय से उसके दादा-दादी बीमार रहने लगे थे, जिनके साथ रहते हुए उसने अपनी पढ़ाई-लिखाई पूरी की थी। शुरुआत में वह ऑफिस निकलते समय पड़ोसियों से उनका ध्यान रखने के लिए बोल आती थी। लेकिन बाद में इसमें दिक्कत होने लगी। धीरे-धीरे कंपनी के एच.आर. कर्मियों ने अनुषा की दिक्कत को समझा और उन्होंने उसके दादा-दादी की देखभाल के लिए एक बैक-अप व्यवस्था की। अब जब भी अनुषा को कंपनी के किसी काम से ऑफिस में देर तक बैठना पड़ता तो वे उसके दादा-दादी की देखभाल के लिए उस शख्स को भेज देते, जिसे इस तरह के कामों के लिए नियुक्त किया गया था।

डेलॉइट कंपनी में पर्सनल ट्रेनर्स, न्यूट्रिशनिस्ट, वैवाहिक विवादों समेत कई व्यक्तिगत समस्याओं के लिए चौबीस घंटे काउंसिलिंग सेवा उपलब्ध है। कुछ ऐसे टीम में बर्स भी हैं, जो मौका पड़ने पर बेबी सिटर की भी सेवाएँ उपलब्ध कराते हैं। इसके अलावा उनके खान-पान के लिए बेहतरीन कैफेटेरिया तथा शरीर को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए मालिश और जिम वैगरह की सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं। ऐसी सेवाएँ कर्मचारियों को ज्यादा उत्पादक होने और उन्हें ज्यादा खुश रखने में मददगार होती हैं।

कर्मचारियों को मिलनेवाले अनुलाभ अब ऑफिस से निकलकर घर तक पहुँच गए हैं। फेसबुक अपने कर्मचारी के यहाँ किसी नए बच्चे के जन्म के अवसर पर खर्च करने के लिए 4,000 डॉलर देती है। स्टेनफोर्ड स्कूल ऑफ मेडिसिन घर पर डॉक्टरों की सेवा मुहैया कराता है। ‘जेनेनटेक’ नामक एक आई.टी. कंपनी घर पर डिनर की सुविधा मुहैया कराती है, क्योंकि कामकाजी दंपती अमूमन ऑफिस से देर से घर पहुँचते हैं।

इसी तरह ‘एवरनोट’ जैसी एक अन्य आई.टी. सर्विस कंपनी के कर्मचारियों को हाउस-कीपिंग स्टाफ की सुविधा मिलती है, जो हफ्ते में दो बार उनके घर जाते हुए उसकी पूरी साफ-सफाई करते हैं। कंपनी का फलसफा है—‘यदि आप दिन भर काम करने के बाद रात को थके-हारे घर लौटते हैं और वहाँ साफ-सफाई से जुड़े कामों का अंबार लगा है तो आप इसे देखकर भुनभुना जाएँगे।’

चूँकि टेक्नोलॉजी ने घरेलू जीवन को प्रभावित करना शुरू कर दिया है (मोबाइल फोन व कंप्यूटर्स इत्यादि के रूप में), लिहाजा अब कंपनियाँ इस तरह की

नीतियाँ बनाने में जुटी हैं, जिससे घरेलू जिंदगी का असर कार्य-स्थल तक न पड़े। यदि कर्मचारी घर में नाखुश रहता है तो इससे उसकी उत्पादकता भी प्रभावित होती है। इसी वजह से ये कंपनियाँ बोनस और शेयर विकल्प जैसे पारंपरिक अनुलाभों से हटते हुए उन्हें उनके घर में रहने के दौरान मानसिक शांति मुहैया कराने को तवज्ज्ञ देने लगी हैं। लंदन में अनेक कंपनियाँ ऑफिस में रोज कर्मियों से उनके किचन से जुड़े काम का शेड्यूल लेती हैं। दूसरी शिफ्ट का ऑफिस ब्वॉय काम पर आते समय सब्जियाँ व मीट वगैरह खरीदते हुए आ जाता है। इसके बाद उन्हें काटकर साफ करके उनमें जरूरी मसालों को मिक्स करते हुए पकाने के लिए तैयार रखता है। कर्मचारी द्वारा इस तरह की मदद का ऑर्डर ऑफिस पहुँचने पर दोपहर 12 बजे से पहले दर्ज हो जाना चाहिए। ऑफिस से लौटते समय कर्मचारी इन रेडीमेड सामानों को उठाते हैं और घर पहुँचकर कुछ ही मिनटों में उनका डिनर तैयार हो जाता है।

फंडा यह है कि यदि आप वास्तव में कर्मचारियों की परेशानी को कम करना चाहते हैं या जिंदगी की सुपरफास्ट रफ्तार को कुछ हद तक घटाना चाहते हैं तो मौद्रिक अनुलाभों जैसे नियमित तौर-तरीकों के बजाय कुछ नए तरह के अनुलाभों को अपनाएँ।

छोटे संस्थानों में मिलता है हर तरह का अनुभव

रवि मल्होत्रा ने एक बड़े बहुराष्ट्रीय संस्थान में तकरीबन 15 साल काम करने के बाद उसे पिछले साल अलविदा कह दिया। यह संस्थान छोड़ते ही उसे दूसरी जगह नौकरी भी मिल गई। लेकिन उसकी यह नौकरी महज 3 महीने चली और पिछले 12 महीनों में उसने पाँच नौकरियाँ बदलने के बाद आखिरकार अपना काम शुरू कर दिया। आप सोच रहे होंगे कि आखिर रवि के साथ ऐसा क्यों हुआ? यदि वह काम में अच्छा नहीं था तो बड़े संस्थान ने उसे अपने यहाँ 15 साल तक क्यों बरकरार रखा? आखिर उन पाँच संस्थानों में वह सहज क्यों नहीं रहा, जो उसे एक के बाद एक नौकरी ऑफर करते गए? इन तमाम संस्थानों ने उसे 15 वर्ष के अनुभव के आधार पर नौकरी दी, न कि कुछ महीने इधर-उधर काम करने के आधार पर।

इसके उलट सुरेश बालसुब्रह्मण्यम् अमेरिका में एक कार्गो एयरलाइंस में पायलट था। वहाँ उसने विमान उड़ाने से लेकर एजेंट से धन-संग्रह करने तक एयरलाइन बिजनेस से जुड़े हर विभाग में काम किया। 1990 के दशक में भारतीय आकाश को निजी कंपनियों के लिए खोलने के बाद किंगफिशर ने सुरेश को अपने यहाँ नौकरी पर रख लिया। जब किंगफिशर की हालत खराब होने लगी तो सुरेश के साथ-साथ अमेरिका में छोटी-मोटी एयरलाइन कंपनियों में काम कर चुके 20 अन्य पायलटों को लागोस में स्थित एरिक एयरलाइंस द्वारा चुन लिया गया। उन्हें उनके कैरियर में छोटी-मोटी कंपनियों में प्राप्त अनुभव के आधार पर चुना गया। मैरिको कंपनी (जो पैराशूट नारियल तेल उत्पादित करती है) के अध्यक्ष व प्रबंध निदेशक हर्ष मरीवाला ने एक साक्षात्कार में कहा, ‘यदि आप बड़े संस्थान का हिस्सा हैं तो आपकी भूमिका सीमित हो सकती है और इसके चलते आप सीमित चीजों के ही संपर्क में आएंगे।’ उनका यह भी कहना था कि छोटे संस्थानों में कर्मचारियों को विभिन्न तरह की परिस्थितियों के साथ कहीं ज्यादा समग्र तरीके से निपटना पड़ता है और इस तरह वे कंपनी संचालन से संबंधित हर तरह की चीजों के बारे में जान जाते हैं।

छोटे संस्थानों में लीडर्स को प्रतिभाओं को आकर्षित करने और बरकरार रखने के लिए लोगों के साथ काम करने, सही टीमें चुनने और संस्थान के लिए एक तरह की संस्कृति स्थापित करने के काबिल होना चाहिए। छोटी जगहों पर लीडर्स में यह काबिलियत होनी चाहिए कि वे काम को करवा सकें और जमकर सौदेबाजी कर सकें तथा बाधाओं से आसानी से निपट सकें।

इसके अलावा, उन्हें यह भी पता होना चाहिए कि नपा-तुला जोखिम कैसे लिया जाए तथा हर कदम पर कैसे नवोन्मेषी बना जाए। उनमें नाकामी हाथ लगने पर प्रतिकूल परिस्थितियों से उबरने की क्षमता भी होनी चाहिए। मरीचाला की राय में, विकास की मानसिकतावाले लोगों का साथ पाना तभी मुमकिन है, जबकि आपके पास ऐसे लोग हों, जिन्हें किसी एक विभाग की विशेषज्ञता की बजाय तमाम विभागों में काम करने का अनुभव हो। यही कारण है कि रवि मल्होत्रा वाइस प्रेसिडेंट होने के बावजूद छोटे संस्थानों में सफल नहीं रहा, जबकि वह बड़े संस्थान में 15 साल तक टिका रहा था। मल्होत्रा इन तमाम नई कंपनियों में एक कारगर बिजनेस मॉडल तैयार करने लायक माहौल नहीं बना सका। इसी वजह से उसे इतने कम समय में एक कंपनी से दूसरी कंपनी में जाना पड़ा।

फंडा यह है कि चौतरफा अनुभव कर्मचारियों को नई नौकरियों की ओर जाने का मौका देता है; जबकि एक ही विभाग में जमे रहना आपके लिए इस तरह की गतिविधियों को बाधित कर देता है।

नए बिजनेस की देखभाल नवजात शिशु के समान करें

उसे याद है कि वह वर्ष 1970 में महाराष्ट्र के अकोला जिले के छोटे से गाँव श्रीखेड़ में रहता था। उस समय उसकी उम्र साढ़े पाँच साल थी। बचपन में उसने कभी नाश्ता नहीं किया था। सुबह उठने के बाद केवल एक कप चाय ही पीता था। दोपहर के भोजन में केवल कुछ रोटी और रात के खाने में दही व चटनी के साथ रोटी खाता था। वह नंगे पाँव स्कूल जाता था। बरसात में अपने सिर को टाट के बोरे से ढकता था, क्योंकि उसके परिवार के पास छाता खरीदने के लिए पैसे नहीं थे। उसके पास स्वेटर भी नहीं था। केवल स्कूल की एक यूनिफॉर्म थी, जिसे वह हर रात धो देता और सूखने पर सुबह पहनकर स्कूल जाता था। उन दिनों पेन से लिखने का चलन था। लेकिन उसका परिवार स्याही और पेन का भी खर्च वहन करने की स्थिति में नहीं था, इसलिए उसने लकड़ी के एक टुकड़े को पेन बना लिया था। स्याही अपने दोस्त से उधार में लेकर लिखता था। वह स्कूल में कभी प्रतिभाशाली छात्र नहीं रहा। गणित में बहुत ही कमजोर था। वह प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दो बार चेक करने के बाद ही देता था। यही आदत उसे आगे जीवन में बहुत काम आई।

वर्ष 1973 में उसका परिवार कलीना के दो बेडरूम के फ्लैट में चला गया। मुंबई में उसके पिता को सरकारी नौकरी मिल गई। उस समय खाड़ी देशों में काम करने के लिए जाने का चलन था। उसके पिता ने भी दुबई के जेबेल अली में नौकरी के लिए आवेदन कर दिया और उन्हें बतौर स्टोर मैनेजर नौकरी मिल गई और पूरा परिवार वहाँ चला गया। सन् 1984 में उसके पिता ने जेबेल अली की नौकरी छोड़ दी और 4,500 दिनार से दुबई में एक स्टोर खोला। उस समय वह 22 साल का हो गया था। उसके पिता ने दो युवाओं को नौकरी पर रखा। स्टोर में इतना काम था कि चारों लोग व्यस्त हो गए। वह अमेरिका की लिबर्टी यूनिवर्सिटी से बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन की पढ़ाई कर रहा था। पढ़ाई के दौरान उसने पाया कि उसका कोर्स व्यवसाय करने के व्यावहारिक अनुभव पर आधारित था। वह तो यह सब पिछले कई वर्षों से करता आ रहा है। बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन का सर्टिफिकेट मिलने के बाद भी उसे अपने स्टोर में काम करने में किसी तरह की झिझक नहीं हुई। उसके पिता ने उसे कभी स्टोर का मालिक होने का अहसास नहीं होने दिया। उन्होंने उसे अपने स्टोर के सभी काम करने की ट्रेनिंग दी थी। शुरुआत में उसकी किराना की एक साधारण दुकान थी। उन्हें जल्द ही अहसास हुआ कि उनकी दुकान पर आनेवाले भारतीयों की जरूरतें कुछ

अलग हैं। वे उस जायके की तलाश में रहते हैं, जिसके बचपन से आदी हैं। वे शैंपू, मैंगो की कैंडी और मिक्स मसाले बच्चों की तरह उत्साह से खरीदते हैं। इन चीजों के अलावा उन्होंने सिखों की दाढ़ी को फिक्स करनेवाला जेल और केश निखार शैंपू भी बेचना शुरू किया। उसकी किराना दुकान शुद्ध भारतीय खाद्य पदार्थों के लिए मशहूर हो गई। जब वह स्टोर चलाने के लिए पूरी तरह से तैयार हो गया तो उसके पिता ने उसे पूरा व्यवसाय सौंप दिया।

अब मिलिए उस व्यक्ति से। वह हैं अल आदिल ग्रुप के धनंजय दतार। वे कभी एक साइकिल नहीं खरीद सकते थे, आज लाजरी कार रॉल्स रॉयल्स चलाते हैं। संयुक्त अरब अमीरात में उनके 29 स्टोर हैं। उनकी मसाले और आटे की चार मिलें हैं। 500 लोग उनके व्यवसाय को चलाते हैं, जहाँ वे 8,000 से ज्यादा आइटम भारत से लाकर बेचते हैं। वे एक दिन में 300 टन माल बेचते हैं।

फंडा यह है कि नए विजनेस का नवजात शिशु के समान पालन-पोषण करना पड़ता है। बदले में कोई अपेक्षा नहीं रखी जाती है। धैर्य और प्रेम के साथ आप पसीना बहाएँगे तो अंत में फायदा होगा।

अपने दिल की बात सुनो

आमिर खान ने जब से 'श्री ईंडियट्स' फिल्म बनाई है, तब से सैकड़ों बार यह सुझाव हर कहीं से मिल जाता है कि जो दिल कहे वह करो। इसके बावजूद हजारों-लाखों युवाओं को ऐसे कोर्स करने के लिए मजबूर किया जाता है, जो कभी-कभार ही उनकी क्षमता के अनुरूप होते हैं। आगर आप लड़के हैं तो इंजीनियर बनने के लिए कहा जाता है, लड़की हैं तो डॉक्टर। देश के ज्यादातर परिवारों की यह कहानी है।

दबाव का आलम यह है कि आई.आई.टी. जैसे संस्थानों में प्रवेश मिल जाने के बावजूद छात्र जानलेवा कदम उठा रहे हैं। मीडिया में इस तरह की ढेरों कहानियाँ आती हैं। यह समय युवाओं के लिए उच्च शिक्षा में उनका भविष्य और दिशा तय करने के नजरिए से फिर अहम होने वाला है। ऐसे में हम एक कहानी उनके सामने रख रहे हैं, जो युवा छात्रों के पक्ष को मजबूत बनाती है।

आगर किसी का बेटा दुश्मन से लड़ते हुए शहीद हो जाता है तो उसके माता-पिता को देश की सेवा के रूप में कुछ सांत्वना मिल सकती है; लेकिन कोई साँप को बचाते हुए अपना बेशकीमती जीवन खत्म कर रहा हो तो निश्चित ही उसे वाहवाही नहीं मिलेगी। इसके बावजूद बैंगलुरु के एम.ई.एस. कॉलेज, मल्लेश्वरम में पढ़नेवाले 19 साल के दो लड़कों के लिए जानवरों को बचाने और उनका संरक्षण सबकुछ है। संदीपजी और अजय प्रभु पार्ट्याइमर के तौर पर फॉरेस्ट सेल से जुड़े हुए हैं। पिछले एक साल में ये दोनों 200 साँप, 100 पक्षी और 20 अन्य जानवरों को बचा चुके हैं।

खतरनाक साँपों और जंगली जानवरों के बीच काम करने के बारे में कोई शायद ही सोचे। लेकिन इन दोनों के लिए यही सबकुछ है। वे न सिर्फ जानवरों की प्रजातियों को बचाते हैं, बल्कि लोगों के बीच इनके बारे में जागरूकता लाने की कोशिश भी कर रहे हैं। वे जितना उन जानवरों के बारे में पढ़ते हैं, उतनी ही उनसे जुड़ी हुई प्रांतियाँ दूर होती जाती हैं। वे जानवरों के व्यवहार को लेकर अधिक आत्मविश्वास से भरते जाते हैं। संदीप नेलामंगला उपनगर में रहते हैं।

उन्होंने एक बार एक पक्षी को बचाकर उसे अपने दोस्त को दे दिया था। उनका वह दोस्त तीन साल से फॉरेस्ट सेल में काम कर रहा था। उसी ने संदीप का परिचय भी उस सेल से कराया था। इसके बाद से वे लगातार अपनी पसंद के इस काम को करते जा रहे हैं और वन्य जीवन के प्रति उनकी रुचि भी बढ़ती जा रही है। करीब एक साल बाद वे अजय से मिले। अजय को सबसे पहले जानवरों

को पहचानने का काम मिला। उन्हें देखने को कहा गया कि उनके सीनियर जानवरों को किस तरह से बचाते हैं।

वे सप्ताह के आखिरी दिनों में कॉलेज के बाद दोपहर में या छुट्टियों में या स्टडी लीव के दौरान जानवरों के संरक्षण का काम करते हैं। कभी-कभी आम लोग उन्हें सीधे फोन कर देते तो कभी फॉरेस्ट सेल से किसी जानवर को बचाने के लिए कॉल आ जाती है। उन्होंने अब तक दुर्लभ किस्म के साँप, चमगादड़, खरगोश, कछुए वगैरह बचाए हैं। वे यह काम मुफ्त में करते हैं। अगर जानवर स्वस्थ होते हैं तो वे उन्हें जंगल में छोड़ देते हैं। अगर उन्हें कोई परेशानी होती है तो पुनर्वास केंद्र में ले जाते हैं। अजय को तो उसके परिवार से समर्थन मिलता है, लेकिन संदीप के माता-पिता उसके इस काम पर अकसर नाराज हो जाते हैं। इसकी वजह से जब भी वह अपने काम पर जाता है तो उसे अपने माता-पिता से झूठ बोलना पड़ता है। लेकिन उसे इसका कोई अफसोस नहीं है, क्योंकि वह अपने जुनून के लिए ऐसा करता है।

इसी जुनून की वजह से वे दोनों सेंटर फॉर एनवायरनमेंट एजुकेशन नामक एन.जी.ओ. से भी जुड़ गए हैं और इसी संस्था के जरिए वे अब लोगों को एक कदम आगे बढ़ते हुए शिक्षित कर रहे हैं। वे बता रहे हैं कि साँप काटने पर कैसे, क्या करना चाहिए। वे अकसर देखते हैं कि लोग साँप के काटने को लेकर या ऐसे ही किसी दूसरी चीजों के प्रति अंधविश्वास के शिकार हैं। ये दोनों उसे दूर करने की कोशिश करते हैं। मौके पर किसी भी वक्त शहर के किसी भी कोने में पहुँच जाते हैं। उनकी यही बात उन्हें लोगों के बीच लोकप्रिय बना रही है।

फंडा यह है कि बच्चों को उनकी पसंद का काम करने से न रोकें।
बच्चों की पसंद-नापसंद का ध्यान रखकर उनकी शिक्षा की योजना बनाएँ। आज की तारीख में नए प्रोफेशन ऐसे ढेरों रास्ते बना रहे हैं, जिनके बारे में माता-पिता को पता भी नहीं होता।

पैसा कमाइए, लेकिन अच्छे तरीकों से

आबूधाबी एविएशन ग्रुप के फतही हिलाल बुहाजा ने जुलाई 2005 में मैक्सिमस एयर के नाम से एक और कंपनी शुरू की। यह कार्गो एयरलाइन थी—भारी-भरकम सामान के परिवहन के लिए। शुरुआत में करीब तीन महीने तक उस कंपनी ने संघर्ष किया। दुनिया के कार्गो बिजनेस में अपने कदम जमाने की जद्दोजहद होती रही। फिर अचानक एक दिन कंपनी के पास एक कॉल आईं पाकिस्तान में चलाए जा रहे राहत और बचाव कार्य में भागीदारी के लिए।

दरअसल पाकिस्तान-अधिकृत कश्मीर के मुजफ्फराबाद में सन् 2005 में भयंकर भूकंप आया था। रिक्टर स्केल पर उसकी तीव्रता थी 7.6। सरकारी ऑकड़ों के हिसाब से करीब 75,000 लोग पाकिस्तान और प्रभावित इलाकों में मारे गए। भारत सहित दुनिया भर की सरकारें मदद के लिए दौड़ पड़ीं; संयुक्त अरब अमीरात की सरकार भी। वह चलित सैन्य अस्पतालों के टेंट, खाना, कर्मचारी और हर वह चीज जो काम की थी, प्रभावित इलाकों में पहुँचाना चाहती थी।

उसने इस काम के लिए मैक्सिमस एयर को चुना था। कंपनी के लिए भी यह मुश्किल मिशन था; क्योंकि जिन इलाकों में मदद पहुँचानी थी, वे पहाड़ियों से घिरे हुए थे। लेकिन पूरे 10 दिन की मशक्कत के बाद उन्होंने वह सब किया, जो कर सकते थे।

जब मिशन पूरा हो गया तो फतही ने इसकी समीक्षा की। इसमें पता चला कि उन्हें अच्छी-खासी आमदनी हुई है। उन्होंने कंपनी के सभी नए कर्मचारियों को बुलाया और उन्हें धन्यवाद दिया। बताया कि कंपनी ने इतना पैसा कमा लिया है कि वह अब अपने दम पर टिक सकती है। कंपनी के प्रमोटर भी खुश थे। लेकिन कुछ ही समय बाद यही प्रमोटर सवाल करने लगे। उनका सबसे अहम सवाल था कि आखिर यह कैसा पैसा है, जो लोगों की दुःख-तकलीफ की कीमत पर कमाया गया है? उन्हें शिद्दत से लग रहा था कि पैसे कमाने का यह तरीका सही नहीं है।

उसी साल दिसंबर में उन लोगों ने एक चैरिटी सेवा शुरू की। नाम था—‘केयर बाइ एयर’। वे लोग समझ चुके थे कि अगर लागत पर ही उड़ानें संचालित होती रहें तो भी व्यापार में लाभ होगा। कार्गो बिजनेस में प्रदर्शन और लाभ का एक मूल मंत्र यह भी है कि प्रति घंटा उड़ान पर लागत कितनी आ रही है। सीधे तौर पर समझें तो जितने ज्यादा घंटे विमान उड़ान भरेंगे उतनी लागत कम होती जाएगी।

सन् 2008 में उन लोगों ने संयुक्त अरब अमीरात की रेड क्रेसेंट संस्था के साथ मूल लागत पर संस्था के सामान के परिवहन के लिए समझौता किया। कंपनी का इस काम में धीरे-धीरे जुड़ाव बढ़ता गया। इसी दौरान उन लोगों को पता चला कि दुनिया भर में मानवीय कार्यों में लागी एजेंसियों के कामकाज में एयर कार्गो उद्योग की बड़ी भूमिका हो सकती है।

करीब पाँच साल के संचालन के बाद आज यह कंपनी क्षेत्रीय स्तर पर अहम एयर कार्गो कैरियर के तौर पर स्थापित हो चुकी है। करीब 200 कर्मचारी इसमें काम करते हैं। बेड़े में आठ विमान हैं। ये पूरे मध्य-पूर्व, यूरोप, अफ्रीका और एशिया में उड़ानें भरते हैं। एतिहाद क्रिस्टल कार्गो के लिए मैक्सिमस नियमित तौर पर कार्गो सेवा देती है।

वह राहत कार्यों के लिए भी रेड क्रेसेंट की विशिष्ट साझीदार के तौर पर जगह बना चुकी है। हाल में ही ‘केयर बाइ एयर’ ने स्वास्थ्य मंत्रालय का विशेष प्रोजेक्ट पूरा किया। इसमें 27 टन दवाइयाँ नेपाल भेजी गई थीं। अगर व्यावसायिक तौर पर इस काम को कराया जाता तो मंत्रालय पर लगभग 81 लाख 15 हजार रुपए का बोझ आता। लेकिन ‘केयर बाइ एयर’ ने इस काम को करीब 3,51,650 रुपए में कर दिया। इतने में लाभ भी कमा लिया। इसके लिए उसने नेपाल रोज उड़ान भरनेवाले अपने विमानों को इस्तेमाल किया। दवाइयों को दुबई वर्ल्ड सेंटर पर इकट्ठा किया गया। उन्हें अरामेक्स नामक कंपनी ने दोबारा इस तरह से पैक किया कि वे आसानी से विमानों में लादी जा सकें। उन्हें आबूधाबी एयरपोर्ट पहुँचाया गया और वहाँ से नेपाल।

फंडा यह है कि अगर आप विजनेस में हैं तो लाभ कमाना आपकी जरूरत है। लेकिन यह बेदाग तरीके से भी कमाया जा सकता है।

बिक्री बढ़ानी है तो सीधे ग्राहक से जुड़िए

पीटर ड्रूकर दुनिया के सर्वश्रेष्ठ मार्केटिंग गुरु माने जाते हैं। उन्होंने एक मंत्र दिया — ‘बिक्री बढ़ानी है तो सीधे ग्राहक से जुड़िए।’ कैडबरी इंडिया ने इस मंत्र को पूरी तरह अपनाया। वह अपने ग्राहकों से सीधे जुड़ी, उनके खुशी के पलों को उनके साथ मिलकर सेलीब्रेट किया, लोगों के दिलों में जगह बनाई और बाजार में बड़ी भागीदारी अपने नाम पर ली। वह भी तब जबकि पारंपरिक मिष्टान की वजह से बाजार में उसका दखल लगातार कमजोर पड़ रहा था।

बंगाल में मिष्टी एक ऐसी मिठाई है, जिसे शादी-ब्याह या ऐसे ही समारोहों में कभी भी कोई खाने की लिस्ट से बाहर नहीं कर सकता। ऐसे में आप क्या करते? पुरानी कहावत है—अगर आप किसी से जीत नहीं सकते तो उससे हाथ मिला लीजिए। कैडबरी ने भी बिलकुल यही किया। उसने मिष्टी से गठबंधन कर लिया। बंगाल में कंपनी की ओर से इस जनवरी में एक अभियान चलाया गया। इसकी टैगलाइन थी—‘कैडबरी मिष्टी, शेरा सृष्टि।’ पूरे शहर और उपनगर की अधिकांश दुकानों को इससे जोड़ा गया। आज कोलकाता में शायद ही कोई ऐसा समारोह होता हो, जहाँ कैडबरी की गिफ्ट ट्रे नजर न आए। महज चार महीने के भीतर कैडबरी मिष्टी बंगाली शादी समारोहों के दौरान या उनसे पहले होनेवाले भोज आयोजनों का हिस्सा बन चुकी है। हालाँकि पारंपरिक चॉकलेट मिष्टी भी बाजार में बनी हुई है। लेकिन पूरे कोलकाता की दुकानों पर कैडबरी मिष्टी की माँग में जबरदस्त इजाफा हुआ है।

बंगाल में समारोहों के दौरान दी जानेवाली उपहार ट्रे को ‘टट्वा’ कहा जाता है। पहले इसमें काले रंग की कोई मिठाई नहीं होती थी; लेकिन चार महीने में ही ‘ब्लैक संदेश’ इसमें जगह बना चुका है। यह बड़ी संख्या में लोगों का पसंदीदा बन चुका है। कुछ और लोकप्रिय किस्में भी हैं; मसलन—कैडमिश, चॉको लावा, चॉकलेट तलशाश और चॉकलेट रुई माच। कैडबरी के प्रेमियों के लिए इस तरह के ढेरों विकल्प हैं। लोग मिष्टी की इन नई-नई किस्मों को, रूपों को हाथोंहाथ ले रहे हैं। कोलकाता की सबसे बड़ी मिठाई की दुकानों में से एक है—दास एंड संस। यहाँ आजकल कैडबरी मिष्टी सबसे ज्यादा बिकनेवाले आइटमों में से एक है। खासकर वह, जिस पर बंगाली में लिखा होता है—‘शुभो बिबाहो’, यानी ‘शुभ विवाह’। क्या बड़े, क्या बूढ़े, आधुनिक और परंपरागत के मिश्रणवाला यह आइटम हर किसी को पसंद आ रहा है।

पिछले साल इसी समय कैडबरी बाजार में चॉकलेट रसगुल्ला लेकर आई थी। आज वह भी पसंदीदा उपहार बन चुका है। कंपनी ने सबसे चतुराईवाला काम

यह किया कि स्थानीय दुकानदारों से कोई प्रतिस्पर्धा नहीं की, बल्कि वह उनके ही साथ घुल-मिल गई। उन्हीं के उत्पादों में चॉकलेट मिलवाकर नई-नई डिश तैयार कराई। चॉकलेट मिलने से मिठाइयों का रंग कुछ डार्क जरूर हो गया, जो कि पहले नहीं होता था। लेकिन इस प्रयोग ने कैडबरी को एक रुढ़िवादी बाजार में जगह बनाने और स्वीकार्यता दिलाने में काफी मदद की, जहाँ पहले यह न के बराबर ही थी।

चॉकलेट को हर समारोह की मिठाई का दर्जा दिलाने के लिए पहले भी देशव्यापी अभियान चलाए गए। लेकिन दुकानदारों ने इसे अपनी अलमारियों में जगह नहीं दी। वे तो चॉकलेट फ्लेवरवाली मिठाइयाँ बेचने से भी कतराते थे। बेचते भी तो अपना उत्पाद बताकर। इसमें से कंपनी को कुछ कमीशन ही देते थे, न कि लाभ में हिस्सा। लेकिन बंगाल के प्रयोग ने चॉकलेट को हर बंगाली समारोह का हिस्सा बना दिया है, वह भी स्वीकार्यता के साथ।

फंडा यह है कि अगर आम समुदाय का हिस्सा बनते हैं, उसकी परंपराओं में घुल-मिल जाते हैं तो अपने उत्पाद को मुश्किल, परंपरागत और रुढ़िवादी बाजार में भी आसानी से पहुँचा सकते हैं।

फायदेमंद हो सकता है 'बिजनेस के अंदर बिजनेस'

हमारे देश में आज भी लोग उन दुकानों पर जाने से झिझकते हैं, जहाँ सोना-चाँदी या गहने गिरवी रखकर कर्ज दिया जाता है। सोना गिरवी रखने का काम करनेवाली कंपनियों ने अपने प्रचार के लिए अक्षय कुमार जैसे लोकप्रिय अभिनेता की मदद से आम लोगों की झिझक को काफी हद तक दूर किया है। फिर भी लोग ऐसी कंपनियों के दफ्तरों में घुसने से पहले चौकनी निगाहों से चारों ओर देख ही लेते हैं। उन्हें डर होता है कि गहने-जेवरात गिरवी रखते हुए अगर किसी ने देख लिया तो क्या कहेगा और अगर आपको लगता है कि सिर्फ हमारे देश में ही लोगों में इस तरह की झिझक या शर्म होती है तो मैं आपको बता दूँ कि अमेरिकियों का हाल भी यही है।

दुनिया के इस सबसे विकसित देश के लोगों को भी इसी की फिक्र होती है कि 'लोग क्या कहेंगे।' लोग क्रेडिट कार्ड या पर्सनल लोन के जरिए उधार लेना ज्यादा बेहतर समझते हैं, बजाय गोल्ड लोन के। तो ऐसे में लोगों को आखिर कैसे आकर्षित किया जाए? अमेरिका के जॉर्जिया, फ्लोरिडा और अलबामा में रॉबी व्हिटेन सामान गिरवी रखने की अपनी दुकान चलाते हैं। उनकी दुकान का नाम है—'मनी माइजर'। सामने से यह एक रिटेल स्टोर है। इसी के एक कोने में गहने, सोना-चाँदी या दूसरा सामान गिरवी रखने का काउंटर है।

किसी को शक भी नहीं हो सकता कि कोई जरूरतमंद यहाँ कब घुसा और कब अपना सामान गिरवी रख पैसे लेकर पीछे के दरवाजे से निकल गया। दुकान पर जो कर्मचारी रखे गए हैं, उनका चयन भी बड़ी सावधानी से किया गया है। देखने में वे रिटेल शॉप पर काम करने वाले आम कर्मचारी ही लगते हैं, लेकिन उन्हें सामान गिरवी रखनेवाले काउंटर पर ग्राहकों को हैंडल करने के तौर-तरीके भी सिखाए गए हैं। अमेरिका में सन् 2008 में आई मंदी के बाद बैंक अब पर्सनल लोन देने में काफी सावधानी बरतने लगे हैं। इसके बाद 'मनी माइजर' और उसके जैसी दुकानों से लोन लेनेवाले लोगों की तादाद काफी बढ़ी है। 'मनी माइजर' ने तो इस मौके का भरपूर फायदा उठाया है। अब तक उसने सात रिटेल शॉप खोल दिए हैं। यहाँ लोग रिटेल शॉपिंग तो करते ही हैं, जिन्हें जरूरत होती है, वे अपनी कीमती चीजें बिना किसी परेशानी के गिरवी रख लोन भी हासिल कर लेते हैं। इस सुविधा का वे लोग विशेष तौर पर फायदा उठा रहे हैं, जो मुश्किल वक्त में बैंक से लोन लेकर भारी-भरकम ब्याज नहीं चुकाना चाहते।

कई लोग ऐसे भी हैं, जो ‘मनी माइजर’ जैसी दुकान पर भी आना नहीं चाहते हैं, लेकिन लोन लेना चाहते हैं। इनके लिए ‘मनी माइजर’ ने पॉनकॉन्फिंडेंशियल डॉट कॉम नामक एक वेबसाइट शुरू की है। इसका लाभ लेने के लिए लोगों को करना सिर्फ इतना होता है कि उस सामान की, जिसे वे गिरवी रखना या बेचना चाहते हैं, एक तसवीर लें। उसके बारे में पूरी जानकारी के साथ उस तसवीर को वेबसाइट पर डाल दें। साथ में यह भी बता दें कि वे उसे कितने में गिरवी रखना या बेचना चाहते हैं। दुकान से संबंधित पारखी लोग उसका आकलन करेंगे।

अगर वे ग्राहक के दिए गए विवरण और बताई गई रकम आदि से संतुष्ट होते हैं तो उस वस्तु के बदले लोन की रकम खाते में ऑनलाइन ट्रांसफर कर दी जाती है। जैसे ही संबंधित ग्राहक ने लोन की रकम पूरी अदा की, उसकी गिरवी रखी गई वस्तु विश्वसनीय कुरियर के जरिए उसके घर पर वापस पहुँचा दी जाती है। सामान गिरवी रखने या खरीदनेवाली इस तरह की दुकानों का लोग दूसरे तरीके से भी लाभ उठा रहे हैं। कई चीजें, जो बाजार में सहज उपलब्ध नहीं होतीं, यहाँ मिल जाती हैं।

मसलन बिना दाग का हीरा या ऐसा ही कोई दूसरा सामान। कोई जरूरतमंद अगर ऐसे सामान को बेचता है तो दूसरा खरीदनेवाला भी मिल जाता है। ‘मनी माइजर’ 27 साल से इस व्यवसाय को सफलतापूर्वक संचालित कर रही है। उसको जितनी आमदनी रिटेल शॉप से होती है, उससे कहीं ज्यादा सामान गिरवी रखनेवाले काउंटर से होती है। मनी माइजर ने ‘बिजनेस के अंदर बिजनेस’ में पिछले छह साल में करीब 300 प्रतिशत की बढ़त दर्ज की है। वहीं लोग भी समाज के उल्लाहनों की चिंता किए बिना इसकी सेवाओं का भरपूर लाभ उठा रहे हैं।

फंडा यह है कि बदलते वातावरण में ‘बिजनेस के अंदर बिजनेस’ की नई अवधारणा किसी के लिए भी काफी फायदेमंद साबित हो सकती है।

फूलों के बिजनेस में लाभ पक्का है

पश्चिम बंगाल और बिहार की सीमा पर एक कस्बा है विद्यासागर। विकास गुट्टुटिया के पूर्वज राजस्थान के झुँझुनूँ से यहाँ आए थे। वह भी इसी कस्बे में बड़ा हुआ। उसके पिता बिहार से फूल उगाकर यहाँ सप्लाई करते हैं। जबकि उसके चाचा कोलकाता में इस बिजनेस को देखते हैं। उसके परिवार का इतिहास ही ऐसा है कि अलग-अलग फूलों के नाम, उन्हें किस तरह संरक्षित रखा जाता है, कैसे हैंडल किया जाता है, यह सब उसके खून में शामिल हो चुका था।

कोलकाता से ग्रेजुएशन करने के बाद वह अपना बिजनेस शुरू करने के मकसद से मुंबई आ गया। लेकिन अपनी उम्र के दूसरे युवाओं की तरह उसे भी प्यार हो गया। जो लड़की उसे पसंद आई, उसका नाम ‘मीता’ था और वह दिल्ली में रहती थी। वह इस बात को अच्छी तरह जानता था कि अगर किसी लड़की को उपहार में फूल दिए जाएँ तो वह कभी गुस्सा नहीं होती। इस तरह से उसके सामने अपने दिल की बात का इजहार भी किया जा सकता है। उसे यह भी पता था कि वह फूलों का सबसे बढ़िया गुलदस्ता बना सकता है, क्योंकि यह सब तो उसे पहले ही आता है। सो, उसने दिल्ली का फूल बाजार छान मारा। इसी दौरान उसे खुशकिस्मती से राजधानी के इस बाजार की दयनीय स्थिति का भी पता लगा। उसने वहाँ से कुछ फूल खरीदे, उनका गुलदस्ता बनाया और मीता से मिला। अपने उपहार से उसे इस कदर प्रभावित किया कि वह आगे चलकर उसकी पत्नी बन गई। उसी शाम वह अपने कुछ दोस्तों से मिला, दिल्ली के फूल बाजार की स्थिति पर चर्चा की और यहाँ से उसके दिमाग में राजधानी में फूलों की दुकान खोलने का विचार आया।

सन् 1994 की बात है यह। सिर्फ 5,000 रुपए थे विकास गुट्टुटिया के पास। उन्होंने इतने में ही ‘फर्न एंड पीटल्स’ के नाम से दिल्ली में फूलों की बुटीक खोल ली। मकसद था लोगों को अंतरराष्ट्रीय मापदंडों के उच्च गुणवत्तावाले फूल उपलब्ध कराना। लेकिन रास्ते में चुनौतियाँ भी खूब थीं। उस वक्त उपहार के तौर पर फूल देने का ज्यादा चलन नहीं था। और इसके लिए फूलों का कहीं से आयात करना तो किसी ने सुना भी नहीं था। प्रशिक्षित लोग भी नहीं थे, जो सीधे उगानेवालों से फूल लेकर आ सकें। स्थानीय फूल बाजार तो फूलों को सिर्फ पूजा में चढ़ाने के लिए बेचे जाने लायक ही मानता था। बरबादी भी खूब और अतिरिक्त खर्चे भी। इन सब चीजों को देखते हुए उन्होंने शादी-ब्याह में फूलों की सप्लाई करना शुरू किया। पूजा के अलावा यही एक ऐसा अवसर

होता है, जब लोग फूलों की कद्र करते ही हैं। एक फ्लोरल अकादमी भी बनाई, जहाँ लोगों को फूलों के बारे में प्रशिक्षण दिया जाने लगा। किस फूल को किस तरह संरक्षित रखना है, कैसे व्यवस्थित करना है आदि सबकुछ यहाँ सिखाया जाने लगा। ऑनलाइन बिजनेस स्थापित किया गया, दूसरे इच्छुक लोगों को फ्रेंचाइजी दी गई। और इस तरह बिजनेस धीरे-धीरे बढ़ने लगा। 1 दुकान से 15 दुकानें हो गई, फ्रेंचाइजी अलग से। सात साल तक बिना लाभ-हानि के ही काम चला। आज ‘फर्न एंड पीटल्स’ के देश के 47 शहरों में 150 आउटलेट्स हैं; दुबई, नेपाल, बँगलादेश और श्रीलंका जैसे देशों में अलग। छोटे शहरों में भी आउटलेट्स खोले जा रहे हैं, जहाँ शादियों का खर्च लगातार बढ़ रहा है और उपहार में फूल देने का चलन भी। कंपनी ने देश में तरुण तहिलियानी और जे.जे. वाल्या जैसे डिजाइनरों से करार कर रखा है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर रॉब वेन हेल्डन और प्रेस्टन बैली जैसे डिजाइनर टिप्प देने को उसके लिए उपलब्ध हैं।

देश की रिटेल फ्लॉवर इंडस्ट्री 30 प्रतिशत की रफ्तार से बढ़ रही है। अगले दो साल में सन् 2015 तक इसके 8,000 करोड़ रुपए का उद्योग हो जाने की उमीद की जा रही है। देश की करीब 30 करोड़ की मध्यम वर्गीय आबादी है और उच्च वर्ग के लोगों के लिए भी फूलों को उपहार में देने का चलन अब एक संस्कृति बन चुका है। मतलब यह बिजनेस अब कई गुना बढ़ने वाला है, जिसे ‘फर्न एंड पीटल्स’ जैसी कुछ कंपनियाँ अकेले हैंडल नहीं कर सकतीं। सरकार भी समझ रही है, इसीलिए उसने इस सेक्टर में 191 नई कंपनियों को हरी झंडी दी है। हालाँकि इनमें 70 ही काम शुरू कर पाई हैं। और हाँ, भारत में गुलाब खूब होते हैं। दुनिया भर के फ्लॉवर बिजनेस में 75 प्रतिशत हिस्सेदारी गुलाब के फूलों की होती है।

फंडा यह है कि अगर आप नए बिजनेस के बारे में सोच रहे हैं तो फूलों के रिटेल आउटलेट्स खोलना या उनका निर्यात करना फायदे का सौदा हो सकता है। बस, इस बिजनेस के लिए एक ही चीज की जरूरत है—योजनाबद्ध तरीके से तेजी से फैसले लेना।

उद्योग-व्यवसाय शुरू करने के लिए

उम्र का कोई बंधन नहीं होता

आजकल कॉलेज जानेवाला हर दूसरा स्टूडेंट हाथ में रिस्टबैंड पहने नजर आ जाता है। किसी पर तो पहननेवाले का नाम भी लिखा होता है। कुछ रिस्टबैंड ब्रांडेड तो कोई बिना ब्रांडवाले। कोई रंगीन प्लास्टिक या सिलिकॉन का बना तो कोई धातु का। बहुत से युवाओं के लिए यह एटीट्यूड को प्रदर्शित करने का एक तरीका है तो कुछ के लिए यह जाताने का कि वे युवा और महत्वाकांक्षी हैं। हममें से कितने लोग हैं, जो इस चलन से पैसे कमाने की सोच सकते हैं।

निश्चित तौर पर रिस्टबैंड कोई स्थापित फैशन नहीं है। लेकिन 19 साल के स्टूडेंट एंटो फिलिप ने इसमें भी पैसे कमाने का तरीका ढूँढ़ निकाला। फिलिप बैंगलुरु के क्राइस्ट कॉलेज से बी.कॉम. की पढ़ाई कर रहा है। उसने ‘द बिग बैंड थ्योरी’ नाम से नई कंपनी शुरू की है, जो कस्टमाइज्ड रिस्टबैंड के मामले डील करती है। फिलिप को यह कंपनी शुरू करने की प्रेरणा एक पुस्तक से मिली। इसका शीर्षक है—‘हाउ आई ब्रेव अनु आंटी’।

पुस्तक की कहानी बताती है कि इसकी मुख्य किरदार अनु का बैंगलुरु के ही एक छात्र वरुण ने किस तरह सामना किया। वरुण अग्रवाल ने मिलकर ‘अल्मा मैटर’ नामक एक कंपनी शुरू की है। यह स्कूल व कॉलेज के बच्चों के कपड़ों और अन्य एसेसरीज का काम करती है। अनु हर किसी की समस्या में अपनी नाक घुसेड़ देती है। जहाँ कोई समस्या न हो वहाँ भी वह उसे सूँघ लेती है। वरुण बहुत महत्वाकांक्षी नहीं है, इसलिए अनु उसे हमेशा उसके इस व्यवहार के लिए कोंचती रहती है। वरुण और उसके दोस्त जो भी काम करना चाहते हैं, अनु उसे खारिज कर देती है, उसे उलट देती है। इस पुस्तक की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह पढ़नेवाले को बताती है कि वह कुछ भी कर सकता है।

किताब से प्रेरणा लेकर फिलिप ने इस साल की शुरुआत में ही टी.बी.बी.टी. शुरू की। इतने कम समय में ही उसने कंपनी को मिले सात ऑर्डर पूरे कर दिए हैं। हर ऑर्डर 300 से 500 रिस्टबैंड का था। फिलिप को जब यह आइडिया आया तो उसने अपने दोस्तों से इसकी चर्चा की। कुछ बड़ी उम्र के लड़कों से भी जिक्र किया। कॉलेज के संरक्षकों में से एक रोश जॉय को यह आइडिया पसंद आया। उन्होंने कंपनी में निवेश करने का फैसला कर लिया। इस तरह फिलिप इस व्यवसाय में कूद पड़ा। फिलिप के माता-पिता शुरू में कुछ हिचकिचाए, लेकिन बाद में वे भी सहमत हो गए। फिलिप के मुताबिक, कंपनी का नाम

टी.बी.बी.टी. इसलिए रखा गया, क्योंकि इसका मतलब होता है संपर्क और संबंध। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में इसका अर्थ है—‘जो चीज संबंधों को बनाए।’ फिलिप ने जो शुरुआती रिस्टबैंड बनाए, उन पर लिखा हुआ था—‘मैन यू।’ फुटबॉल क्लब मैनचेस्टर यूनाइटेड से यह प्रेरित था। फिलिप ने अपनी कंपनी के नए रिस्टबैंड कुछ दोस्तों को दिए। वे उन्हें बेहद पसंद आए। दोस्तों के जिन अन्य दोस्तों ने इन रिस्टबैंड को देखा, उन्हें भी अच्छे लगे और इस तरह फिलिप को पहला ऑर्डर मिला।

फिलिप ने जब पहला ऑर्डर पूरा किया तो उसके कई डीलरों ने सुझाव दिया कि वह उत्पाद को चीन या थाईलैंड से आयात कर ले। वे भी इन्हें भारत में नहीं बनवाते थे। लेकिन फिलिप को यह ठीक नहीं लगा। उसने बैंगलुरु में कुछ फैक्टरियों से संपर्क किया, जो रिस्टबैंड को मोल्ड कर सकें। काफी मशक्कत के बाद उसे आखिरकार पीन्या इंडस्ट्रियल एरिया में एक फैक्टरी मिल गई। इसी बीच टी.बी.बी.टी. को बड़ा ऑर्डर मिला।

मिशनरी मूवमेंट जीसस यूथ एक कार्यक्रम कर रहा था। उसके लिए संगठन को इस तरह के रिस्टबैंड की जरूरत थी। ऑर्डर पूरा होते ही फिलिप की कंपनी के रिस्टबैंड हाथोंहाथ बिके। इसके बाद उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। बिक्री बढ़ाने में कम कीमत का भी काफी योगदान रहा। बिना किसी विशेष लिखावटवाले स्टैंडर्ड रिस्टबैंड की कीमत 30 रुपए है। अगर इन पर कुछ खास लिखवाना है तो कीमत बढ़ जाती है। हालाँकि तब भी बाजार में मिल रहे दूसरे रिस्टबैंड की तुलना में यह कम ही रहती है। अगर ऑर्डर थोक में मिले तो और भी कम। फिलिप की कंपनी शुद्ध सिलिकॉन से रिस्टबैंड बनाती है, इस दावे के साथ कि इनसे स्वास्थ्य को कोई नुकसान नहीं होता।

फंडा यह है कि उद्योग या व्यवसाय के लिए उम्र का कोई बंधन नहीं होता। खासतौर पर तब जबकि आप आधुनिक और तेजी से बदलते चलन पर नजर रखते हों। जल्दरत सिर्फ इस बात की है कि बाजार में चल रही लहर को भाँपकर जल्दी से उसमें कूद जाएँ।

असफल लोगों पर बिजनेस भी एक नई चीज है

कनाडा में टोरंटो के शेरीडॉन कॉलेज से 24 साल की भारतीय लड़की सम्मन चौधरी पोस्ट ग्रेजुएशन कर रही हैं। वे हर लिहाज से ‘ए’ ग्रेड स्टूडेंट हैं। इसके बावजूद के.जी. से ही अपनी किताबी पढ़ाई से संतुष्ट नहीं हैं। इस वजह से वे अकसर खुद को चौराहे पर पाती हैं। उन्हें अपने आदर्शों और मूल्यों के बारे में पवका कुछ पता नहीं होता। यहाँ तक कि वह अपनी पहचान को लेकर भी भ्रम में हैं। एक दिन वह सामान्य चेकअप के लिए डेंटिस्ट के पास बैठी थीं और अपने ट्विटर अकाउंट पर नजर दौड़ाए जा रही थीं।

अचानक उसे एक इंस्टीट्यूट के बारे में जानकारी मिली। यह नॉन प्रॉफिट इंस्टीट्यूशन दो साल के प्रशिक्षण कार्यक्रम का प्रस्ताव कर रहा था। इसमें यह बताया जाना था कि विभिन्न किस्म के कौशल सीखते हुए वास्तविक दुनिया के अनुभव कैसे हासिल करें। सम्मन ने इसके लिए आवेदन कर दिया। अगले तीन महीने तक सख्त प्रवेश प्रक्रिया चली। अंत में संस्थान के न्यूयॉर्क ऑफिस में इंटर्न के तौर पर उसका चयन हो गया। ‘कर के सीखो’ वाली फिलॉसफी के आधार पर प्रशिक्षण हो रहा था। हर सप्ताह 40 घंटे तक काम, ताकि वह बेशकीमती वर्क फोर्स में शामिल हो सके। पहले साल उसे बिजनेस के बारे में उच्च स्तर पर विवरण दिया गया। मार्केटिंग, बिजनेस डेवलपमेंट, संचालन, मानव संसाधन, बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन आदि की जानकारी दी गई।

यह बताया गया कि किस तरह बिजनेस के लिए कैसी तकनीक की जरूरत होती है। व्यवस्था का ढाँचा किस तरह का हो। गुणवत्ता कैसे सुनिश्चित करें आदि। दूसरे साल भविष्य के नियोक्ता के तौर पर सभी स्टूडेंट क्षेत्र विशेष में कौशल को निखारने, सामर्थ्य बढ़ाने और नेटवर्क को मजबूत करने के तौर-तरीके सीख रहे थे।

लेकिन क्या उद्यमिता सिखाई या पढ़ाई जा सकती है? जिस संस्थान का यहाँ जिक्र किया गया है, वह तो कम-से-कम मानता है कि हाँ। बिलकुल नई सोच है इसकी। दो साल के प्रशिक्षण के साथ कॉलेज ड्रॉपआउट को रोजगार और व्यवसाय के मौके उपलब्ध करा रहा है। यहाँ से प्रशिक्षण लेने के बाद प्रशिक्षु अपना एक डिजिटल पोर्टफोलियो बनाते हैं। इसमें वे खासतौर पर उन चीजों को हाईलाइट करते हैं, जो उन्होंने प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान की हैं। अपने कौशल विशेष के प्रदर्शन पर भी फोकस करते हैं। इस पोर्टफोलियो में संबंधित

प्रशिक्षु की सिफारिशों भी होती हैं। उनके साथियों और संस्थान के प्रशासन के कमेंट भी इसमें शामिल किए जाते हैं।

भारत में उदयपुर की स्वराज यूनिवर्सिटी भी काफी हद तक इसी तरह का काम कर रही है। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी से पोस्ट ग्रेजुएट मनीष जैन इसके मुखिया हैं। वे यूनेस्को के लिए भी काम करते हैं। यहाँ भी दो साल का लर्निंग प्रोग्राम चलाया जाता है। बिजनेस कौशल के साथ सामाजिक न्याय व सतत पारिस्थितिकीय विकास (इकोलॉजिकल स्टेनेबिलिटी) के विषय भी प्रशिक्षण में शामिल हैं। यहाँ तक कि सीखने के तौर-तरीके भी यहाँ खुद डिजाइन किए जाते हैं।

इससे प्रशिक्षु अपने दिल में दबे सपनों को बाहर निकालते हैं, फिर उनके मुताबिक अपने कौशल को निखारने में मेहनत करते हैं। उदयपुर की स्वराज यूनिवर्सिटी और अमेरिका के इंस्टीट्यूट में कई समानताएँ हैं। दोनों ही संस्थाएँ महज तीन साल पुरानी हैं। इनके पहले बैच निकल चुके हैं और वहाँ से सीखे हुए छात्र टेड टॉक जैसे ग्लोबल मीडिया पर लगातार लेक्चर दे रहे हैं। ये दोनों ही संस्थान इस बात की मिसाल हैं कि असफल लोगों की मदद करके भी काफी कुछ किया जा सकता है। वे कॉलेज ड्रॉपआउट और जीवन में विफल हो चुके लोगों को चुनते हैं और उन्हें उस क्षेत्र में सफलता की राह दिखाते हैं, जो उनके दिल के करीब है।

फंडा यह है कि भविष्य में असफल लोगों को सफल बनाने का विजनेस अच्छा अवसर हो सकता है। हालाँकि युवा आबादी के लिए सफलता की ऐसी सर्वमान्य परिभाषा ढूँढ़ना, जो उनमें रचनात्मकता लाए, उनमें विश्वास पैदा करे, जरा मुश्किल काम है।

किसी समस्या के हल में भी है बिजनेस आइडिया

देश में सिर्फ 1 प्रतिशत लोग ही हैं, जो हवाई यात्रा करते हैं। एयरपोर्ट पर ब्रांडेड रेस्टोरेंट्स में खाने-पीने का लुत्फ़ ले पाते हैं। इसके अलावा 87 प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जो सड़क से यात्रा करते हैं। ऐसे लोगों के पास जहाँ चाहे रुककर अपनी पसंद की जगह पर खाने-पीने का विकल्प होता है। बाकी बचे 12 प्रतिशत लोग। ये वे हैं, जो ट्रेनों से यात्रा करते हैं और इनके पास कोई विकल्प नहीं होता, सिवाय इसके कि वे ट्रेन की गंदी पेंट्री से परोसा जानेवाला भोजन या नाश्ता करें।

हाल में ही मुझे जोधपुर से कोटा तक ट्रेन से यात्रा करनी पड़ी। गाड़ी सुबह 6 बजे जोधपुर से चली और दिन में 3 बजे कोटा पहुँची। इस बीच मैंने तय कर लिया था कि मैं ट्रेन में मिलनेवाला नाश्ता या लंच नहीं लूँगा, भले ही पूरे समय भूखा रहना पड़े। ज्यादा दिक्कत हुई तो थोड़े-बहुत फल खा लूँगा। वैसे भी ट्रेन में यह लाइन अकसर किसी-न-किसी यात्री के मुँह से सुनने को मिल जाती है ‘सफर में खाना बड़ी समस्या है भाई साहब।’ साथ में सफर कर रहे एक सज्जन ने जब मुझसे नाश्ते के बारे में पूछा तो मैंने उनके सामने भी वही लाइन दोहरा दी। लेकिन उनका जवाब मेरी उम्मीद से परे था।

उन्होंने कहा, ‘ट्रैवलखाना डॉट कॉम पर फोन लगाइए न।’ यह कुछ-कुछ वैसा ही था जैसा टी.वी. पर एक विज्ञापन में दिखाया जाता है—‘किंविकर डॉट कॉम को मिस कॉल मार न।’ मुझे लगा कि आजमाकर देखने में क्या बुराई है। इंटरनेट पर सर्च किया तो ट्रैवलखाना से संपर्क करने के लिए फोन नंबर मिल गया। फोन लगाया तो दूसरी तरफ से शुरू में इस तरह पूछताछ की गई कि लगा जैसे वे रेलवेवाले हों। मुझसे पूछा गया कि आपका नाम क्या है? पी.एन.आर. नंबर क्या है? बर्थ नंबर क्या है? कहाँ जाना है? मोबाइल नंबर क्या है? वगैरह, वगैरह। लेकिन जब मुझसे मेरी पसंद के खाने के बारे में जानने की कोशिश की गई तो लगा कि नहीं, मैंने सही जगह फोन लगाया है।

फिर मुझसे भुगतान के तरीके के बारे में पूछा गया। सबकुछ पूछने-बताने के बाद कॉल डिस्कनेक्ट हो गई। सुबह के करीब 10.30 बजे थे। ट्रेन जैसे ही जयपुर पहुँची, मेरा नाश्ता और लंच दोनों मेरे सामने थे। उसके एवज में मैं भोजन लानेवाले व्यक्ति को भुगतान कर रहा था।

ट्रैवलखाना डॉट कॉम के प्रमुख हैं पुष्पिंदर सिंह। महज 40 साल के आसपास की उम्र है उनकी। उन्होंने रेल यात्रियों की इस समस्या को समझा कि इन लोगों को अच्छी गुणवत्तावाले खाने की सख्त जरूरत है और वह उन्हें मिलता नहीं। उन्होंने सबसे पहले जयपुर स्टेशन को आधार बनाया। यहाँ से रेलयात्रियों की मदद करने का फैसला किया। शुरुआत हुई सिर्फ दो रेस्टोरेंट से। यहाँ से वे यात्रियों की पसंद का खाना सफर के दौरान उनके ऑर्डर पर उन तक पहुँचाते थे। आइडिया हिट हो गया।

महज 16 महीनों के भीतर वे अब तक 50,000 यात्रियों को भोजन पहुँचा चुके हैं। रोज औसतन करीब 500 यात्रियों तक भोजन पहुँचा रहे हैं। अगर यात्री समूह में हैं तो उनके लिए डिस्काउंट का भी बंदोबस्त उन्होंने कर रखा है। आज करीब 90 जगहों से अलग-अलग रूट पर जानेवाली 2,000 ट्रेनों के यात्रियों को वे कवर करते हैं। लगभग 110 रेस्टोरेंट हैं, जहाँ 24 घंटे यात्रियों के लिए गरमा-गरम भोजन बनाने और पहुँचाने का काम चलता है।

काम करने का तरीका देखिए। जैसे ही कोई ऑर्डर मिलता है, तुरंत संबंधित रेस्टोरेंट को ईमेल, एस.एम.एस. या फोन कॉल के जरिए सूचना भेजी जाती है। जिस जगह पर खाना पहुँचाना है, वहाँ ऑर्डर देनेवाले यात्री की ट्रेन कब पहुँच रही है, यह पता लगाने के लिए रियल टाइम पर ट्रेन की लोकेशन पर लगातार नजर रखी जाती है। गाड़ी पहुँचने के कुछ देर पहले ही ऑर्डर का पार्सल तैयार किया जाता है। ट्रेन के स्टेशन पर आते ही संबंधित यात्री के पास गरमागरम खाना पहुँचा दिया जाता है।

ट्रैवलखाना इस पूरी सर्विस के लिए खाने की कीमत से ऊपर 20 प्रतिशत कमीशन लेता है। लेकिन शायद ही किसी को इससे परेशानी होती हो। पुष्पिंदर ने शुरू में खाने का बिजनेस करने का नहीं सोचा था। वे रेल यात्रियों के लिए टैक्सी सुविधा शुरू करना चाहते थे। लेकिन इस प्रोजेक्ट पर काम करते हुए उन्हें लगा कि लोगों के लिए होटल या टैक्सी सर्विस उतनी बड़ी समस्या नहीं है जितना कि अच्छा खाना। और बस, काम शुरू हो गया।

फंडा यह है कि अगर आप समस्या को पहचान सकें तो उसका समाधान आपके लिए अच्छा बिजनेस आइडिया हो सकता है। इसको यूँ भी कह सकते हैं कि अगर आप समस्या का समाधान उपलब्ध करा रहे हैं तो एक अच्छे उद्यमी भी हो सकते हैं।

मिशन से किया बिजनेस बहुत कुछ देता है

प्रदीप लोखंडे एक गरीब परिवार में पैदा हुए। उनके पिता महाराष्ट्र में पुणे के निकट वाड़ गाँव में चपरासी थे। प्राइवेट छात्र के रूप में प्रेजुएशन करने के बाद प्रदीप कुछ ऐसा बनने के लिए निकल पड़े, जिस पर दूसरों को रश्क हो सकता है। आज प्रदीप लोखंडे महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़ के अनेक गाँवों में जाना-पहचाना नाम हैं। वह एक मिशन लेकर चल रहे हैं। उनका लक्ष्य अपने पुणे स्थित ग्रामीण उपभोक्ता संस्थान ‘रुरल रिलेशंस’ के जरिए तकरीबन 28,000 गाँवों के स्कूलों में यूज्ड कंप्यूटरों की व्यवस्था करना है।

जब उनके दिमाग में एक रुरल मार्केटिंग डाटाबेस तैयार करने का आइडिया आया तो वह अपनी मार्केटिंग जॉब तथा अपने व्यापारिक प्रतिष्ठान को छोड़ते हुए 4,000 गाँवों में उनकी स्थानीय अर्थव्यवस्था के बारे में अहम जानकारियाँ जुटाने निकल पड़े। सन् 1996 में उन्हें टाटा टी तथा पारले कन्फैक्शनरीज के रूप में अपने इस डाटाबेस के पहले ग्राहक मिले। आज उनके डाटाबेस के प्रतिष्ठित ग्राहकों में हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड, प्रॉक्टर एंड गैंबल, मैरिको, एशियन पेंट्स, टेल्को और डी.एस.पी. मेरिल लिंच जैसी कंपनियाँ शामिल हैं। वह गर्व से कहते हैं—‘मैं संदेश प्रसारित करने में उनकी मदद करता हूँ, जिसके लिए मुझे पैसे मिलते हैं। मैं इस पैसे का इस्तेमाल इस काम (ग्रामीण स्कूलों का कंप्यूटरीकरण) को आगे बढ़ाने में करता हूँ। मैं एक ऐसा बिजनेसमैन हूँ, जो ग्रामीण बाजारों की अप्रयुक्त संभावनाओं से आसक्त है।’ गाँवों में जाते हुए लोखंडे ने महसूस किया कि वहाँ के छात्रों ने कंप्यूटर को सिर्फ टी.वी. पर देखा है और नए गैजेट्स को उनके संपर्क में लाने से उनका आत्मविश्वास बढ़ सकता है। उन्होंने सन् 1998 में कुछ प्रतिष्ठित लोगों से निवेदन किया कि वे यूज्ड कंप्यूटरों को ग्रामीण स्कूलों की खातिर दान कर दें। लेकिन कहीं से भी प्रतिक्रिया नहीं मिली। इसके बाद उन्होंने खुद यूज्ड कंप्यूटरों को जुटाने और उन्हें इन स्कूलों को मुहैया कराने का जिम्मा उठाया। इसके ज्यादातर खर्चें वह खुद वहन करते। ग्रामीण छात्रों की आँखों में कंप्यूटर को पहली बार देखने पर चमक नजर आई। उससे उन्हें अपना यह प्रयास सार्थक लगा। सन् 2000 में पुणे के निकट मंदारदेव गाँव के स्कूल में यूज्ड कंप्यूटर लगाने से शुरू हुआ उनका यह अभियान 225 स्कूलों तक पहुँच चुका है और 4,700 अन्य स्कूल कंप्यूटर दानदाताओं का इंतजार कर रहे हैं।

यूज्ड कंप्यूटरों को स्कूलों में लगाने के पीछे एक कारण तो यह है कि वे सस्ते पड़ते हैं। इसके अलावा ये महज दिखावटी चीजों के रूप में बेकार नहीं पड़े रहते। ग्रामीण स्कूलों में कंप्यूटर पहुँचने के बाद गाँव की कई लड़कियों को छह महीने में ही कंप्यूटर के एडवांस्ड फंक्शंस को इस्तेमाल करते देखा गया, जबकि पहले उन्हें इस पर अपना नाम टाइप करने में ही पसीने छूट जाते थे।

लोखंडे का यह उत्साह दूसरों को भी पेररणा दे रहा है। मसलन उन्होंने एक घटना का जिक्र करते हुए बताया कि अमेरिका में रहनेवाले एक पूर्व आई.आई.टी. छात्र ने ऐसे ग्रामीण स्कूल को कंप्यूटर दान किया, जहाँ से उसके दिवंगत पिता ने शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने 2,000 से 10,000 की आबादीवाले तकरीबन 28,000 उमरते ग्रामीण बाजारों की पहचान की है, जहाँ साप्ताहिक हाट के दौरान सैकड़ों अन्य लोग भी आकर संवाद करते हैं। दूसरी ओर कॉर्पोरेट डोनर भी लोखंडे की इस संस्था के 35,000 ग्रामीण स्कूलों द्वारा तैयार डाटाबेस से लाभान्वित होते हैं।

फंडा यह है कि यदि आपके विजनेस से एक मिशन भी जुड़ा हो तो समझो, सोने पर सुहागा है। इससे आप पैसा तो कमाएँगे ही, साथ-ही-साथ लोगों में आपकी विश्वसनीयता बढ़ेगी और साथ ही आपका अच्छा नाम भी होगा।

सिलाई-बुनाई जैसे घरेलू कामकाज भी दिला सकते हैं भारी मुनाफा

सर्वियों के मौसम में दोपहर को धूप सेंकती युवा महिलाएँ संभवतः सोचती होंगी कि खाली समय में कैसे रजाई-गद्दे वगैरह सिलना या पसंदीदा केक बनाना सीखा जाए। वैसे आपने गाँवों या छोटे कस्बों में लड़कियों को इस मौसम में दोपहर को स्वेटर वगैरह बुनते देखा होगा।

वास्तव में दुनिया के किसी भी हिस्से में ऐसी डॉमेस्टिक आर्ट क्लासेज नहीं हैं, जहाँ आपको सबकुछ सीखने को मिल सके। ऐसी तमाम घरेलू कलाएँ या हुनर जिज्ञासु लड़कियों को उनकी बहन, माँ, आंटी या पड़ोसिनों से सीखने को मिलते हैं। मगर ‘क्राफ्ट्सी’ नामक एक-डेढ़ साल पुरानी डेनवर-बेस्ड ऑनलाइन सर्विस है, जिसमें तमाम तरह के डॉमेस्टिक आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में दक्षता हासिल करने के लिए दसियों हजार महिलाएँ खुशी-खुशी प्रति क्लास 20 से 50 डॉलर तक दे रही हैं। अनेक महिलाओं के लिए घरेलू कलाओं में हाथ आजमाना वैसा ही है जैसा पुरुषों के लिए गोल्फ खेलना, जिससे मन भी हलका हो जाता है। सन् 2010 में जॉन लेविस, जोश स्कॉट, टोड टोबिन और ब्रेट हाना ने अपनी इस कंपनी की लॉचिंग करते वक्त यही सोचा था कि ऐसी महिलाओं की रुचियों को ध्यान में रखते हुए एक टेक्नोलॉजी बिजनेस खड़ा किया जाए, जो चीजों को अपने हाथों से बनाना पसंद करती है।

इस तरह इन चारों ने मिलकर एक इंटरएक्टिव ई-स्कूल वेबसाइट तैयार की, जो बाकी ऑनलाइन स्यूटोरियल्स के मुकाबले टीचर्स व स्टूडेंट्स को ज्यादा करीब से जोड़ती है। ‘क्राफ्ट्सी’ के ज्यादातर पाठ्यक्रम (जो कई घंटों के हैं और अलग-अलग अध्यायों में बैटे हुए हैं) रजाई-गद्दे बनाने, एंबॉयडरी करने और बेकिंग इत्यादि से संबंधित उच्च स्तरीय प्रशिक्षण देने के लिहाज से तैयार किए गए हैं। इस कंपनी ने कुछ ऐसी तकनीकों में 50 लाख डॉलर से ज्यादा का निवेश किया है, जिससे आपको ऐसा लगे कि आप किसी क्लास रुम में ही बैठकर कुछ सीख रहे हैं। उदाहरण के तौर पर, 30 सेकंड के रिपीट फीचर पर सिंगल क्लिक के जरिए आपको बैकअप लेने और उन तमाम बारीकियों को सीखने का दोबारा मौका मिल सकता है, जिसे आपने तेजी से दौड़ते वीडियो में मिस कर दिया हो। इन वीडियोज के साथ त्रिआयामी मॉडल चित्र और आवर्द्धित ग्राफिक्स भी पेश किए गए हैं, जिससे कई अहम चीजों और विधियों को समझाने में मदद मिलती है।

सोन्ही के इंस्टीच्यूट ऑफ आर्ट ने तीन साल पहले 'आर्ट एज एन अल्टरनेटिव इन्वेस्टमेंट' जैसा एक ऑनलाइन टीचिंग प्रोग्राम शुरू किया, जिसके छह हफ्ते के सत्र की फीस 1,485 डॉलर है। इसके ग्लोबल मार्केटिंग डायरेक्टर जोनाथन फ्रीडलैंडर का कहना है कि छात्रों की बढ़ती माँग को देखते हुए यह अगले 18 महीने में अपनी क्लासेज की संख्या दोगुनी करने जा रहा है। 'क्राफ्ट्सी' लोगों को अपनी ऐसी हॉबीज में महारत हासिल करने में मदद कर रहा है, जिसमें अन्यथा आपका काफी पैसा खर्च हो सकता है। मसलन जब आप कोई सिलाई मशीन खरीदते हैं और ढंग से नहीं सीख पाते हैं तो आपके लिए यह खर्च काफी भारी पड़ेगा। मगर महज 20 डॉलर के खर्च पर सिलाई की कला में महारत हासिल करना एक छोटा सा निवेश है। दिसंबर 2012 तक 'क्राफ्ट्सी' के यूजर्स 41,000 क्लासेज के लिए भुगतान कर चुके थे और इसके तकरीबन 50,000 पैड पंजीकृत सदस्य थे। इसकी पहली क्लास के लिए भुगतान करनेवाले 50 प्रतिशत स्टूडेंट्स अगली क्लास के लिए भी अपना नाम दर्ज कराते हैं। इसकी तमाम यूजर्स महिलाएँ हैं, जिनमें से 83 प्रतिशत की उम्र 41 साल से ज्यादा है और 75 प्रतिशत कॉलेज शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं। उनकी औसत घरेलू आय 80,000 डॉलर से ज्यादा है। 'क्राफ्ट्सी' रजाई-गद्दे इत्यादि बनाने के लिए सिलाई का धागा और कपड़े वगैरह भी बेचती है। कंपनी ने पिछले साल तकरीबन 1 करोड़ 20 लाख डॉलर की आय अर्जित की, जिसका तकरीबन एक-चौथाई हिस्सा इस ई-कॉर्मर्स से आया है। पिछला साल कंपनी का पहला मुनाफा देनेवाला साल रहा।

फंडा यह है कि कई बार घरेलू सिलाई-बुनाई जैसे दुनियावी काम भी आपको लाखों का मुनाफा दे सकते हैं, बशर्ते आप अपने कारोबार के प्रति योजनाबद्ध सोच लेकर आगे बढ़ें।

बहुराष्ट्रीय कंपनी से कमतर नहीं है खेती का व्यवसाय

रविवार की किसी शाम को आप अपनी माँ या पत्नी के बनाए आलू फ्राई का स्वाद लेते हुए शायद ही कभी यह सोचते होंगे कि इसके लिए आलू जंग बहादुर सिंह संघा के खेतों से आया होगा या उनकी रिसर्च लैबोरेटरी में तैयार बीजों से पैदा हुआ होगा। कई मायनों में वे इस देश के पोटेटो किंग हैं। पूरे भारत में आप कहीं भी 360 से 560 हाँस पावर इंजिन मॉडलवाले 175 चार पहिया वाहन एक जगह कतार में खड़े कहीं और नहीं देख सकते। मैं 9 आर./9 आर.टी. सीरीज के जॉन डीरे ट्रैकर्स की चर्चा कर रहा हूँ, जो अमेरिका से आते हैं।

44 वर्षीय जंग बहादुर आठ बेडरूमवाले महलनुमा घर में रहते हैं। पंजाब में जालंधर के पास उन्होंने 5,000 एकड़ खेत किसानों से किराए पर ले रखे हैं और इसमें वे हर साल करीब 56 हजार टन आलू उपजाते हैं। वे देश के सबसे बड़े आलू उत्पादक हैं। संघा परिवार सन् 1937 में जालंधर से सिंध (पाकिस्तान) चला गया; लेकिन बँटवारे में उन्हें अपना सबकुछ गँवाना पड़ा। इसके बाद वे नए सिरे से अपनी जिंदगी की शुरुआत करने के लिए जालंधर चले आए।

उनके पिता एस. हरदेव सिंह ने इंडियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली से वेजिटेबल क्रॉप्स में मास्टर्स डिग्री ली थी और सन् 1960 में उन्होंने इस व्यवसाय की शुरुआत की। अपने ज्ञान और योग्यताओं का इस्तेमाल कर उन्होंने सब्जियों के बीजों का उत्पादन शुरू किया। वैज्ञानिक समुदायों के साथ मिलकर काम करते हुए उन्होंने पंजाब में तैयार किए गए आलू के बीजों को भारत में आलू का उत्पादन करनेवाले अधिकांश राज्यों तक पहुँचा दिया। उन्होंने धीरे-धीरे अपने व्यवसाय का विस्तार किया और फिर पंजाब में लीज-लैंड फार्मिंग मॉडल की शुरुआत की। आजकल जिसे कॉण्ट्रैक्ट फार्मिंग मॉडल के नाम से जाना जाता है, वह इसी पर आधारित है।

1960 और '70 के दशक में जालंधर और कपूरथला जिलों की जमीन बहुत अधिक रेतीली थी और इसलिए वह फसल उपजाने लायक नहीं थी। कुछ समय बाद अपने दो बेटों के साथ मिलकर उन्होंने खाली पड़ी 5,000 एकड़ से ज्यादा जमीन को खेती के लायक बनाने का काम शुरू किया। यह कई चरणों में किया गया।

पहले जमीन से रेत हटाई गई, उसका समतलीकरण किया गया, घास-फूस हटाए गए, मिट्टी में खाद डाली गई, फिर सिंचाई और बिजली सप्लाई की

व्यवस्था की गई और अंत में उसमें फसल बोई गई। पूरी तरह बंजर रही छोटे-मँझोले किसानों की जमीनों को पाँच से सात साल के अंदर खेती के लायक बना दिया गया। लीज-कॉण्ट्रैक्ट की अवधि खत्म होने के बाद जमीन उसके मालिक को लौटा दी गई, ताकि वह इसमें खेती कर सके। कई किसान, जो उस समय जमीन होते हुए खेती नहीं कर पाते थे, उन्हें संघा की कोशिशों का फायदा मिला।

यह वह दौर था, जब किसी के पास ट्रैक्टर होना बड़ी बात थी। जंग बहादुर और उनके भाई हरमिंदर के पास पोस्ट ग्रेजुएशन की डिग्री है। जंग ने न्यूयॉर्क के इथाका में स्थित कॉर्नेल यूनिवर्सिटी के डिपार्टमेंट ऑफ फ्रूट एंड वेजिटेबल साइंस से प्लांट फिजियोलॉजी एंड पैथोलॉजी में मास्टर्स डिग्री हासिल की। पढ़ाई के दौरान उन्होंने आलू पर अपना ध्यान केंद्रित किया और तमाम जानकारियाँ हासिल कीं। इसकी मदद से वे पंजाब लौटकर आने के बाद टिश्यू कल्चर एंड प्लांट पैथोलॉजी फैसिलिटी की शुरुआत करने में सफल रहे। आज दोनों भाई किराए पर ली गई हर 1 एकड़ जमीन के बदले 30 हजार रुपए का भुगतान करते हैं। इसके अलावा खुद भी 17-17 एकड़ जमीन पर खेती करते हैं। पंजाब में एक व्यक्ति 17 एकड़ से ज्यादा जमीन अपने पास नहीं रख सकता। उनका हर दिन किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी के सी.ई.ओ. की तरह बीतता है। दिन की शुरुआत बैठकों से होती है, फिर रिसर्च सेंटर की देखरेख, खेतों का निरीक्षण, पौधों का इलाज करनेवाले डॉक्टरों से मुलाकात, कानूनी सलाहकारों से सलाह-मशविरा, भुगतान, उत्पादों की बिक्री जैसे कई काम वे एक दिन में निपटाते हैं।

देर रात घर लौटने के बाद अगली सुबह सूरज उगते ही उनका रुटीन फिर से शुरू हो जाता है। जंग बहादुर आलू के उत्पादन और व्यवसाय से संबंधित तमाम नई तकनीकों और ट्रैक्टर की खबर रखते हैं और इसके लिए देश-विदेश में सेमिनार, वर्कशॉप, कॉन्फ्रेंस, मीटिंग्स आदि में भाग लेते हैं।

फंडा यह है कि खेती का व्यवसाय किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी के व्यवसाय से कमतर नहीं है। खेती के क्षेत्र में सफल लोगों के दिन की शुरुआत बैठकों से होती है और फाइलें निपटाते उनका काम देर रात खत्म होता है। व्यवसाय में आगे बने रहने के लिए उन्हें लगातार प्रयास करना होता है। खेती हमेशा दुनिया में सबसे फायदे का व्यवसाय बना रहेगा, बशर्ते इसका प्रबंधन सही तरीके से किया जाए।

Published by

Prabhat Prakashan

4/19 Asaf Ali Road,

New Delhi-110002

e-mail: prabhatbooks@gmail.com

ISBN 978-93-5186-015-0

Naye Daur Ke Business Funde

by N. Raghuraman

Edition

First, 2013